1.5 hp

वैदिक राष्ट्रीय ऋचाएँ

प्रो० कृष्णवल्लभ पालीवाल

।। ओ३म् ।।

वैदिक राष्ट्रीय ऋचाएँ

(मातृभूमि, स्वराज्य, राज्य-व्यवस्था
राष्ट्र-निर्माण, राष्ट्र-संगठन,
राष्ट्ररक्षा, सैनिक शक्ति,
युद्ध आदि विषयों
पर वेदों का
सन्देश)

लेखक :
प्रो० कृष्णवल्लभ पालीवाल
पी-एच.डी.

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

॥ ओ३म् ॥

वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ।

अथर्व० १२।१।६२

प्रकाशक : विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द
४४०८, नई सड़क, दिल्ली-११०००६
भारत ।

संस्करण : १९९५

मूल्य : १२.०० रुपये ।

लेजर टाइप सेटर : वैदिक प्रेस,
कैलाशनगर, दिल्ली-३१, फोन : २२४६६४६

मुद्रक : स्पीडोग्राफिक्स, पटपड़गंज, दिल्ली

VEDIC RASHTRIYA RICHAYAN BY
Prof. Krishnvallabh Paliwal

प्राक्कथन

वेद विश्व की प्राचीनतम पुस्तकें हैं एवं समस्त ज्ञान के भण्डार हैं। ये न केवल वर्तमान हिन्दुओं के पूर्वज आर्यों के धर्म ग्रन्थ हैं बल्कि विश्व के समस्त मतों, पंथों एवं सम्प्रदायों के आदि स्रोत हैं। हिन्दुओं का विश्वास है कि करुणामय परमेश्वर ने सृष्टि के आदि में मानव जाति के लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार के सुखों एवं कल्याण के लिए वेदों का आविर्भाव किया। अतः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अँथर्ववेद के नाम से विख्यात इन वेदों का ज्ञान ईश्वरीय है क्योंकि इनका ज्ञान सार्वदेशिक सार्वकालिक एवं विश्व के समस्त मानव मात्र के लिए समान रूप से व्यवहार करने योग्य है। इनमें मानव इतिहास नहीं हैं। इनकी शिक्षाएँ समतावादी, मानवतावादी, कल्याणकारिणी, पक्षपात रहित, रंगभेद, वर्ग भेद, भाषा भेद से मुक्त एवं विश्वबन्धुत्व की प्रेरणा देने वाली, वैज्ञानिक एवं सत्य आधारित हैं।

वेदों में जहाँ एक ओर आध्यात्मिक, दर्शन, ईश्वर, जीव, प्रकृति, उपासना, कर्मकाण्ड आदि का वर्णन है, वहाँ दूसरी ओर आचार, नीति, शिक्षा, भौतिक ज्ञान विज्ञान, समाज-व्यवस्था, राष्ट्र- निर्माण एवं राष्ट्रीयता जैसे विषयों का समुचित उल्लेख है। वस्तुतः वेद मानव जीवन के प्रत्येक पहलू पर प्रकाश डालते हैं। मातृभूमि, स्वराज्य, राष्ट्र-निर्माण और राष्ट्ररक्षा जैसे विषयों पर वैदिक धारा अत्यन्त प्रगतिशील एवं व्यावहारिक है। वैदिक राष्ट्र-व्यवस्था पूर्णतया प्रजातान्त्रिक है और ग्राम-सभा से लेकर राज-सभा आदि विभिन्न समितियों

द्वारा राज्य-व्यवस्था का मार्ग दर्शन करती है। राष्ट्र-निर्माण के लिए वेद व्यक्ति के चरित्र-निर्माण और उसके समाज के प्रति उत्तरदायित्व पर विशेष बल देते हैं और अपनी मातृभूमि के लिए सर्वस्व बलिदान करने की प्रेरणा देते हैं ।

वेद का प्रजातन्त्र वर्तमान विकृत प्रजातन्त्र नहीं है जिसमें दल बदल की छूट है । वेद अधार्मिक राष्ट्र प्रशासक व सांसद को हटाने एवम् अहितकारी समितियों को समाप्त करने का आवाहन करते हैं । वेदों का सन्देश है-- समृद्ध, तेजस्वी, विस्तृत, समान आचार संहिता वाले राष्ट्र का निर्माण। वे जहाँ एक ओर राष्ट्र-निर्माण, स्वराज्य, राष्ट्र विस्तार एवं मातृभूमि के लिए प्राण न्योछावर करने की प्रेरणा देते हैं तो वहीं दूसरी ओर ज्ञात और अज्ञात, सम्बन्धी और गैर सम्बन्धी में भेद किए बगैर देशद्रोही को समूल नष्ट करने का आवाहन करते हैं ।

पाश्चात्य विद्वान् प्रचार करते आए हैं कि प्राचीन आर्य राष्ट्रीयता की अवधारणा से अवगत न थे, जबकि सचाई यह है कि राष्ट्र-राज्य की कल्पना वेदों से ली गई है । जिसमें मातृभूमि, मातृसंस्कृति और मातृभाषा का राष्ट्र-निर्माण के लिए आवाहन किया गया है । इतना ही नहीं एक विश्व परिवार या एक विश्व संसद की अवधारणा का मूल स्रोत ऋग्वेद का दसवें मंडल का अन्तिम सूक्त है । वर्तमान में सेकुलरवाद और सह-अस्तित्व का स्रोत अथर्ववेद का पृथिवी सूक्त है । अतः वेदों में मातृभूमि, स्वराज्य, राज्य-व्यवस्था, राष्ट्र-निर्माण, राष्ट्र-संगठन, राष्ट्ररक्षा, सैनिक शक्ति, युद्ध आदि विषयों पर अनेकों मन्त्र हैं, जो आज भी हमारे प्रेरणा-स्रोत हैं।

भारतीयों ने राष्ट्र के विषय में वेदों से सदैव प्रेरणा ली है और आज जब हमारा राष्ट्र आन्तरिक और बाह्य षड्यन्त्रों का शिकार हो रहा है, बचे खुचे खण्डित भारत राष्ट्र को

विरोधी शक्तियां नष्ट करने को तुली हैं । स्वार्थी अदूरदर्शी नेता राष्ट्रहितों की उपेक्षा कर रहे हैं वे शत्रुओं की सुनियोजित राष्ट्र विरोधी गतिविधियों की जाने या अनजाने उपेक्षा कर रहे हैं । ऐसी संकट की घड़ी में ही वेदों की राष्ट्रहितैषी नीतियां राष्ट्र-रक्षाकवच बन सकती हैं । देशवासियों के लिए प्रेरणा-स्त्रोत हो सकती हैं । यहाँ हमने संक्षेपं में नमूने बतौर, केवल एक सौ पचास मन्त्रों की केवल वैदिक राष्ट्रवाद एवं राष्ट्र-भक्ति की एकांकी प्रस्तुत की है। इसके लिए हमने वेद मन्त्रों के अर्थ वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं पूजनीय श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के वेद भाष्यों के आधार पर प्रस्तुत किये हैं । आशा है पाठकों को यह वैदिक चयनिका पसन्द आएगी । आपके सुझाव सादर आमन्त्रित हैं ।

दीपावली २०५१ —कृष्णवल्लभ पालीवाल

प्रभो ! हमारे राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति हो और वह सदा फूले फले व सुरक्षित रहे । यही हमारी हार्दिक कामना है, भावना है, प्रार्थना है ।

राष्ट्रीय प्रार्थना

: १ :

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् आ राष्ट्रे राजन्यः शूरऽइषव्योऽति व्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धि-र्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ —यजु० २२।२२

ब्रह्मन् स्वराष्ट्र में हों द्विज ब्रह्म तेजधारी ।
क्षत्रिय महारथी हों अरिदल विनाशकारी ॥

होवें दुधारु गौवें वृष अश्व आशुवाही ।
आधार राष्ट्र की हों नारी सुभग सदा ही ॥

बलवान् सभ्य योद्धा यजमान पुत्र होवें ।
इच्छानुसार बरसे पर्जन्य ताप धोवें ॥

फल फूल से लदी हों औषधि अमोघ सारी ।
हो योग क्षेमकारी, स्वाधीनता हमारी ॥

२. मातृभूमि

(पृथिवीसूक्त)

1 2 3 4 5 6

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥१॥
—अथर्व॰१२।१।१।

देशवासियों में महान् सत्य, सत्य ज्ञान, तेजस्विता, दृढ़ संकल्प शक्ति, कर्त्तव्य परायणता, तपस्वी वृत्ति, ज्ञान-विज्ञान की विद्वत्ता और कल्याण भावना से परोपकारमयी वृत्ति—ये सात महाशक्तियाँ राष्ट्र को धारण करती हैं । हमारे भूतकाल और भविष्य काल की रक्षा करने वाली वह हमारी मातृभूमि हमारे लिए विस्तृत प्रकाश और स्थान करे । अर्थात् जिस राष्ट्र के लोगों में ये सातों महाशक्तियाँ जीवन का अंग बन जाती हैं। वह राष्ट्र सदा बना रहता है । हे मातृभूमि! हम उपरोक्त सम्पूर्ण गुणों से युक्त हो तेरा संरक्षण करने को तैयार हैं । तू अपने आधार से भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों के सम्पूर्ण पदार्थों का उत्तम प्रकार से पोषण करने में समर्थ है ।

असम्बाधं बध्यतो मानवानां यस्याम् उद्वतः प्रवतः समं बहु । नानावीर्या औषधीर्या बिभर्त्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥२॥ —अथर्व॰१२।१।२।

जिस हमारी मातृभूमि के मननशील मनुष्यों के बीच में निम्नताएँ व उच्चताएँ रहने पर भी समता या मैत्री भाव है।

जो हमारी मातृभूमि रोगों को दूर करने वाली अनेक उत्तम गुण युक्त औषधियों को, वनस्पतियों को धारण करती है । वह मातृभूमि हमारे लिए कीर्ति व यश की वृद्धि का साधन बने। अर्थात् हमारे राष्ट्र के नेताओं में ऐक्यभाव हो ताकि राष्ट्र समृद्धिशाली हो सके ।

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः सम्बभूवुः । यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥३॥ —अथर्व०१२।१।३।

हमारी जिस मातृभूमि में समुद्र और अनेकों नदी नाले, तालाब, झील-झरने आदि हैं, जिस मातृभूमि में सब भांति के अन्न, फल, शाक आदि बहुतायत से उपजते हैं, जिसमें सजीव प्राणी चलते फिरते हैं, जिसमें खेतिहर मनुष्य, शिल्पकर्म विशारद कारीगर व उद्योगशील जन मिलकर रहते हैं । इस तरह की हमारी मातृभूमि हम को समस्त भोग व ऐश्वर्य प्रदान करे । अर्थात् हमारे देश में जो जल के अनेक स्रोत हैं हम उनका यातायात, सिंचाई एवं कृषि के विकास के लिए उचित प्रकार से प्रयोग करें तथा राष्ट्र की समृद्धि में योगदान दें ।

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः । या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥४॥ —अथर्व०१।१२।४।

जिस मातृभूमि की चारों दिशाएँ विस्तीर्ण हैं, खुली हुई हैं, जिसमें अन्नादि की खेती होती है । और सभी मनुष्य मिल कर रहते हैं, मिलकर उन्नति करते हैं, जो मातृभूमि प्राणधारी और चेष्टाशील प्राणी जगत् का अनेक प्रकार से भरण-पोषण करती है । वह हमारी मातृभूमि गो-दुग्ध और अन्नादि से हमारा भरण पोषण करे । अर्थात् हमारी मातृभूमि

में प्रत्येक व्यक्ति के लिए उन्नति के सभी रास्ते खुले होने चाहिए । हम लोगों को मिल जुलकर कृषि आदि धन्धों से राष्ट्र की समृद्धि करनी चाहिए ।

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् । गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥५॥ —अथर्व०१२।१।५।

जिस हमारी मातृभूमि में पुराने समय में हमारे पूर्वज लोग बल, बुद्धि, ऐश्वर्य से प्रसिद्ध सब भांति पराक्रम रूप कर्त्तव्य अच्छी तरह करते रहे हैं जिसमें विद्वान् और वीर पुरुष राक्षसी स्वभाव वाले लोगों को जीतते रहे हैं, जो गौओं, घोड़ों और विभिन्न प्रकार के पशु पक्षियों को विशेष सुख देने का स्थान है, वह हमारी मातृभूमि हम को ऐश्वर्य, तेज और शौर्य प्रदान करे । अर्थात् हमारे पूर्वजों, ब्राह्मणों ने अपने ज्ञान द्वारा, क्षत्रियों ने वीरता द्वारा, वैश्यों ने वाणिज्य द्वारा और कारीगर व शिल्पकारों ने कारीगरी द्वारा श्रेष्ठ आदर्शों एवं मापदण्डों को स्थापित किया है, जिन्होंने मिलकर दुष्ट, घातकी, हिंसक और आततायी लोगों को नष्ट किया है । ऐसी मातृभूमि हमें सर्वांगीण समृद्धि प्रदान करे ।

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी । वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्र ऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥६॥ —अथर्व०१२।१।६।

हमारी जो मातृभूमि सब का पोषण करने वाली सोना, चांदी, हीरा, पन्ना आदि रत्नों को धारण करने वाली, सब पदार्थों को आश्रय देने वाली, यावत् स्थावर जंगम जीवों को स्थान देने वाली, सब प्रकार के मनुष्यों की उन्नति में सहायता देने वाली है, वह हमारे नेताओं, ज्ञानियों और वीर पुरुषों तथा हम को सब प्रकार के ऐश्वर्य देने वाली होवे अर्थात् देशवासी विद्वान् खनिज,

सम्पदा का समुचित विकास व अपने राष्ट्र की समृद्धि करें ।

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानी देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।
सा नो मधुप्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥७॥

—अथर्व॰१२।१।७।

हम निद्रा, तन्द्रा, आलस्य आदि रहित, विद्वान्, वीर और कुशल जागरूक जन सब प्रकार के पदार्थों को देने वाली, और जो हमारे लिए मधुर प्रिय हितकारी पदार्थों को हमारे प्रयास करने पर देती है, उस विस्तृत मातृभूमि की प्रमाद रहित रक्षा करते हैं। वह मातृभूमि हमें वीरता, शूरता, ज्ञान तथा ऐश्वर्य से पूर्ण करे । अर्थात् सब प्रकार से सुख देने वाली अपनी राष्ट्रभूमि की हम जागरूक होकर रक्षा करें और सब प्रकार के सुख भोगें।

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद्यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः।
यस्यां हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः ।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥८

—अथर्व॰१२।१।८।

जो भूमि पहले समुद्र के गर्भ में थी जिसकी बुद्धिमान् लोग अपनी कौशल युक्त बुद्धियों से सेवा करते हैं । जो हमारा विस्तार करने वाली और हमें ख्याति देने वाली हमारी मातृभूमि का अमर हृदय परम रक्षक और आकाश की भांति परम व्यापक परमेश्वर में सत्य से ढका हुआ है, वह हमारी मातृभूमि हमारे उत्तम राष्ट्र में तेजस्विता, विद्वत्ता, शूरता, शक्तिमत्ता आदि गुणों को बढ़ाने वाली हो । अर्थात् हे मातृभूमि! तेरा हृदय व तेरी संस्कृति भी, सत्य से आवृत है और उसमें परमात्मा का निवास है । तेरी वह संस्कृति परम्परा से हमारे राष्ट्र में प्रवाहित होती चली आ रही है । इस सांस्कृतिक जीवन को अमर बनाने के लिए राष्ट्र की संस्कृति, सत्यता. आस्तिकता एवम्

आध्यात्मिकता से प्रेरित होनी चाहिए । उसी में से समस्त विघ्न बाधाओं को प्रतिरोध करने की शक्ति, तेजस्विता व बल उत्पन्न हो सकता है ।

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥९॥

—अथर्व०।१२।१।९।

जिस राष्ट्रभूमि में सब ओर जाने वाले परिव्राजक संन्यासी, जल की भांति, समदृष्टि हो रात दिन सावधान रहते हुए परिभ्रमण करते हैं, जो मातृभूमि हमें सब प्रकार के अन्न जल देती रहती है, वह हमारी मातृभूमि हमें बल, वीर्य, तेज से सींचे और बढ़ावे । अर्थात् हमारे राष्ट्र में जो जल की धाराएँ नदियाँ आदि हैं । उनका जल वैज्ञानिक विधि से नहरों आदि के द्वारा, कृषि सिंचाई, पशुपालन एवं दुग्ध विकास उद्योग धन्धों आदि के कार्यों में लगाना चाहिए ताकि राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति हो सके ।

यामाश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे ।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः ।
सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥१०॥

—अथर्व०१२।१।१०।

जिस मातृभूमि का अश्विगण भर्त्ता और हन्ता शूरवीर ने मापन किया जिसमें पालनहार ने भांति-भांति का पराक्रम दिखाया है, जिसको शत्रु विनाशक, शक्तिपति, कर्मकुशल ज्ञानी पुरुष ने शत्रु रहित किया है । वह हमारी मातृभूमि जैसे माता पुत्र को दूध देती है, वैसा ही हम सब पुत्रों को खाने पीने की वस्तुएं प्रदान करे । अर्थात् राष्ट्र में यातायात और समाचार पहुंचाने के प्रचुर साधन होने चाहिए । राज्य व्यवस्था ऐसी हो कि कोई भीतरी या बाहरी शत्रु राष्ट्र को हानि न पहुँचा सके । राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति

को राष्ट्र को अपनी माता के समान पूजनीय, वन्दनीय मानना चाहिए। जिस राष्ट्र में ऐसी भावनाएँ होती हैं। उसमें खाद्य पदार्थों की कभी कमी नहीं होती है।

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥११॥

—अथर्व०१२।१।११।

हे हमारी मातृभूमि! तुम्हारी पहाड़ियां और बर्फ से ढके पहाड़ व वन-जंगल हमें सुखदायक हों, भरण पोषण करने वाली, कृषि योग्य, ऊपजाऊ भूरे, काले और लाल रंगों वाली तथा अनेक रूपों वाली और स्थिरता वाली, सब का आश्रय-स्थान, विस्तृत तथा विस्तार वाली और ख्याति देने वाली, सम्राट् से सुरक्षित अपनी मातृभूमि पर मैं पूर्ण आयु वाला, अहिंसित और सब प्रकार के कष्टों से रहित आनन्द पूर्वक अधिष्ठित रहूँ। अर्थात् राज्य व्यवस्था ऐसी हो कि बर्फीले पहाड़ों से लेकर छोटी-छोटी पहाड़ियां, जंगल एवं विभिन्न प्रकार की मृदाओं का राष्ट्र कल्याण के लिए सर्वोत्तम उपयोग हो। लोग राष्ट्र में निर्भय होकर रहें। प्रशासन राष्ट्र को सुदृढ़ और सुरक्षित करे एवं प्रत्येक नागरिक स्वस्थ नीरोग होकर पूर्ण जीवन सानन्द रहे।

यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं ऊर्जस्तन्वः सं बभूवुः।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु॥१२॥ —अथर्व०१२।१।१२।

हे मातृभूमि! जो तेरे मध्य भाग में उत्पन्न होनी वाली वस्तुएं हैं, और जो नाभि स्थान में उत्पन्न होनी वाली वस्तुएं हैं और जो अन्न, रस आदि बलकारक पदार्थ तेरे शरीर से उत्पन्न

होते हैं, उन सब को हमें प्रदान कर हमें तू पवित्र बना दे । हे राष्ट्रभूमि! तू मेरी माता है और मैं तेरा पुत्र हूँ । अन्न आदि को खूब उत्पन्न करने वाला मेघ राजा अथवा परमात्मा हमारा पालक पिता है । वह भी हमारी पालना करे और हमें पूर्ण बनावे क्योंकि उचित समय पर पर्याप्त वर्षा से ही अधिकतम फल, फूल, सब्जी, अन्न आदि पैदा होते हैं । अर्थात् राज्य को चाहिए कि राष्ट्र सम्पदा-खनिज पदार्थ, तेल, वन, वृक्ष एवं भूमि का समुचित प्रबन्ध कर श्रेष्ठ उपयोग करें एवं राष्ट्र के सभी निवासी अपने को मातृभूमि के पुत्र के समान मानकर आपस में भाई-भाई की तरह प्रेम से मिलकर राष्ट्रोन्नति करें ।

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः। यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात् । सा नो भूमिर्वर्धयद्वर्धमाना ।।१३।।

—अथर्व०१२।१।१३।

जिस मातृभूमि पर लोग वेदी का निर्माण कर यज्ञ के लिए तैयार रहते हैं । विभिन्न प्रकार के विशेषज्ञ परोपकार और उन्नति के कार्य करते हैं जिसमें श्रेष्ठ लोगों का सत्कार होता है । जिस पृथिवी में पहले उन्नति करने वाले वीर्य युक्त आहुति के साथ यज्ञीय यूप होते हैं । जहाँ उत्तम उपदेश कहे जाते हैं, वह मातृभूमि हम लोगों द्वारा बढ़ती हुई, हमें बढ़ाये । अर्थात् राष्ट्र में विभिन्न विद्याओं के विशेषज्ञ तैयार किये जायें जो लोक कल्याणकारी योजनाओं को क्रियान्वित करें जिससे व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सभी लाभान्वित होवें ।

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन । तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ।।२४।।

—अथर्व०१२।१।१४।

हमारी मातृभूमि ! जो हम से द्वेष करे, जो हम पर सेना से आक्रमण करे, जो मन से और शस्त्र से हम को दास बनाना चाहे, जो हमारा वध करना चाहे, हमारे मनोरथों को पूर्ण करने वाली मातृभूमि तू उसे नष्ट कर दे । अर्थात् जो हम से या हमारे राष्ट्र से द्वेष करे, राष्ट्र को कमजोर करना चाहे उसे सरकार और प्रजा मिलकर नष्ट कर दें ।

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः। तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥१५॥ –अथर्व॰१२।१।१५।

हे मातृभूमि ! हमारे राष्ट्र के सब मनुष्य तुझ से ही उत्पन्न हुए हैं । तेरे द्वारा ही उनका लालन पालन हुआ है । तुझ पर ही वे विचरण करते हैं । तुम ही दो पैर वाले मनुष्यादि और चार पैर वाले पशुओं प्राणियों आदि का धारण और पोषण करती हो। हे हमारी मातृभूमि! ये पाँचों प्रकार (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व अन्य) के मनुष्य जिन के लिए उदय होता हुआ सूर्य अपनी किरणों से अमर ज्योति का चारों ओर विस्तार करता है, वे तुम्हारे ही हैं। वे तुम्हारी सेवा की इच्छा रखते हैं । अर्थात् राष्ट्र के सभी विद्वान्, शूरवीर, व्यापारी, कारीगर और अन्य सब लोग मिलकर मातृभूमि की रक्षा करें, सेवा करें व अपनी भी सर्वांगीण उन्नति करें ।

ता नः प्रजा सं दुह्रतां समग्राः ।
वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥१६॥
–अथर्व॰१२।१।१६।

वे सब प्रजाएँ मिलकर सुख–मङ्गल–रूप दुग्ध से परिपूर्ण करें । हे हमारी मातृभूमि ! मेरे लिए वाणी की मधुरता को प्रदान करो । अर्थात् हम सब देशवासी आपस में सत्य हितकर और

प्रेमयुक्त व्यवहार करें ।

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम्।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥१७॥ —अथर्व०१२।१।१७।

सब प्रकार के अन्न और ओषधियों व वनस्पतियों को उत्पन्न करने वाली लम्बी चौड़ी सब को आश्रय देने वाली स्थिर सत्यज्ञान, शूरता आदि धर्म से धारण की हुई कल्याणकारिणी और सुखकारी मातृभूमि की हम सब प्रकार से सेवा करते रहें। अर्थात् राष्ट्र में सब प्रकार के अन्न व औषधियाँ उत्पन्न करने चाहिए तथा राष्ट्र को सुदृढ़ व स्थिर बनाने के लिए देशवासियों एवं प्रशासकों का आचरण मानवीय धर्म के अनुकूल होना चाहिए। ऐसा धर्म से धारित राष्ट्र ही प्रजा के लिए सुखकारी हो सकता है ।

महत्सधस्थं महती बभूविथ महान्वेग एजथुर्वेपथुष्टे। महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् । सा नो भूमे प्ररोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन॥१८॥ —अथर्व०१२।१।१८।

हे मातृभूमि! तू विशाल है और इसीलिए तू हम सब का बड़ा व मिलकर रहने का आश्रय-स्थान बनी हुई है । तेरा चलना, हिलना, डुलना सभी वेग युक्त होता है । शत्रु का नाश करने वाले बड़े ज्ञान, बल, उत्साह व ऐश्वर्य युक्त शूरवीर जागरूकता के साथ तुम्हारी रक्षा करते हैं । ऐसी हे मातृभूमि! हमें सुवर्ण के समान तेजस्वी व ओजस्वी बना दे ताकि कोई भी हम से द्वेष करने का साहस न कर सके । और न हम ही आपस में द्वेष करें ।

अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु ।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥१९॥
—अथर्व०१२।१।१९।

पृथिवी के मध्यभाग में अग्नि है जिसमें से ज्वालामुखी फूट पड़ते हैं । इसकी अन्न औषधियों में अग्नि जिसके सेवन से अन्न पचता है व भूख लगती है । जल में विद्युत् के रूप में अग्नि है । पत्थरों में घर्षण शक्ति से अग्नि है । मनुष्यों के भीतर जठराग्नि के रूप में और तेजस्विता की अग्नि है गौओं, घोड़ों और पशुओं में अग्नि है जिससे उनका भोजन पचता है और उनमें ऊर्जा है जिससे वे काम करते हैं । अर्थात् राष्ट्र ऐसा हो जिसके कण-कण में तेजस्विता, ऊर्जा और शक्ति भरी हो एवं देशवासियों का हृदय स्वाभिमान एवं राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत हो सच्चरित्र व देदीप्यमान हो और अग्नि के समान तेजस्वी हो ।

अग्निर्दिव आतपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम् ।
अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ॥२०॥
—अथर्व०१२।१।२०।

आकाश में सूर्य के रूप में अग्नि है जो सब ओर से प्रकाश देता हुआ तप रहा है । प्रकाशमय उस अग्नि के प्रकाश से अन्तरिक्ष प्रकाशित होता है यानी हमारे राष्ट्र के आकाश में अग्नि व्याप रहा है । होम की हुई आहुति को ले जाने वाले, घृत को चाहने वाले भौतिक अग्नि को रोगों के नाश के लिए मनुष्य लोग प्रदीप्त करते हैं ।

अग्निवासाः पृथिव्यसितज्ञूस्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु ॥२॥
—अथर्व०१२।१।२१।

हमारी मातृभूमि अग्नि का वस्त्र ओढ़े हुए है, अग्नि का गोला है । इसीलिए अपनी तेजस्विता के कारण अपने निवासियों को बन्धन रहित जतलाने वाली है । वह मातृभूमि मुझे भी तेजस्वी, वर्चस्वी एवं तीक्ष्ण कर देवे । अर्थात् जो राष्ट्र स्वतन्त्रता

स्वाभिमान एवं सम्मान से जीना चाहते हैं । उनके निवासियों में असीम तेजस्विता, अग्नि के समान चारित्रिक पवित्रता और शत्रु को भस्म करने वाला अग्निसम शौर्य होना चाहिए ।

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम् ।
भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः।
सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवीं कृणोतु॥२२॥
—अथर्व॰१२।१।२२।

जिस हमारी मातृभूमि में मनुष्य यज्ञ करते हैं और उसमें उत्तम-उत्तम पदार्थों का हवन करके वायु और जल आदि को शुद्ध करते हैं, जिस भूमि में यज्ञों के कारण उत्तम वृष्टि होकर विपुल अन्न उपजता है । जिसको खाकर मनुष्य आनन्द से रहते हैं । वह मातृभूमि हमारे लिए श्रेष्ठ जीवन और लम्बी आयु प्रदान करे एवं सब प्रकार से हमारी उन्नति करने वाली हो । अर्थात् राष्ट्र में कल्याणकारी योजनाओं द्वारा लोग शारीरिक, मानसिक, भौतिक व आध्यात्मिक सुख उठाकर सुखी जीवन जिएं और दीर्घायु हों ।

यस्ते गन्धः पृथिवी सं बभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः ।
यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु ।
मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२३॥ —अथर्व॰१२।१।२३।

हे हमारी मातृभूमि! तुम्हारे में जो उत्तम सुगन्ध उत्पन्न हो रहा है, जिस गन्ध को औषधियाँ व अन्नादि धारण कर रहे हैं, जिस गन्ध को जल स्रोत धारण कर रहे हैं, जिसे सुन्दर युवा लोग और सुन्दरी युवतियाँ प्राप्त कर रही हैं । उस गन्ध से हे मातृभूमि! मुझे भी सुगन्धित कर दे । और कोई किसी से आपस में वैर न करे । सभी मैत्री भाव से रहें । अर्थात् देशवासी मन, वचन, कर्म से अपने जीवन को राष्ट्रभक्ति की

सुगन्धभरी भावना से भर लें । उनका आचरण इतना प्रिय, मोहक और समरस हो कि कोई किसी से द्वेष न करे ।

यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे।
अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं कृणु ।
मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२४॥

—अथर्व०१२।१।२४।

हे मातृभूमि जो सुगन्ध तुम्हारे कमलों में है, सूर्योदय के समय जिसे वायु हर ले जाती है उस सुगन्ध से हे मां ! हमें भी सुगन्धित करो । हम में कोई किसी से द्वेष न करे। अर्थात् राष्ट्र भावना की अनुपम सुगन्ध से सभी देशवासी आपस में जुड़े रहें, संगठित रहें और सब एक दूसरे के सहयोग से उन्नति करें क्योंकि राष्ट्रभूमि के प्रति श्रद्धा की भावना सब को एकीकृत कर देती है ।

यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः ।
यो अश्वेषु वीरेषु मृगेषूत हस्तिषु ।
मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२५॥

—अथर्व०१२।१।२५।

हे हमारी मातृभूमि ! जो तेरी स्त्रियों में, पुरुषों में सुगन्ध है तथा पुरुषों में सौभाग्यशालिता एवं कान्ति है जो सुगन्ध घोड़ों, वीर जनों, हिरनों और हाथियों में है, तथा युवती कन्याओं में जो सुगन्ध व कान्ति है । हे मातृभूमि ! उस सुगन्ध और कान्ति को हम में भी भर दे और हम में से कोई भी किसी से द्वेष न करे। अर्थात् हम में बचपन से ही राष्ट्रीयता की भावना ओत-प्रोत हो जाए । हमारे व्यवहार व आचरण में इतनी समता, ममता और

स्नेहिलता हो कि सभी हमारी ओर आकृष्ट हो जायें और सब मित्र बन जायें । सब राष्ट्रभक्ति की गाँठ से जुड़ जायें तथा मातृभूमि के पुत्रों के बीच कैसा भी द्वेष वैर आदि न हो ।

शिलाभूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता ।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥२६॥
—अथर्व०१२।१।२६।

जिस हमारी मातृभूमि के ऊपर शिला, पर्वत, पत्थर व धूल है, जिसके भीतर सुवर्ण रत्नादिक बहुत से अमूल्य पदार्थ हैं । जब तक ज्ञान शौर्य आदि गुण हम में बने रहते हैं तभी तक हमारी मातृभूमि का संरक्षण होता रहता है । हे मातृभूमि! हम नमस्कार करते हैं और कामना करते हैं कि हम में मातृभूमि की रक्षा के लिए सब गुण बने रहें । अर्थात् हम ऐसा आचरण करें कि मातृभूमि की सदा रक्षा होती रहे और हम राष्ट्र सम्पदा का अधिकतम लाभ उठा सकें ।

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा ।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छा वदामसि ॥२७॥
—अथर्व०१२।१।२७।

जिस हमारी मातृभूमि में वृक्ष वनस्पतियां, लतादि बहुतायत से हैं और वे स्थिर रहते हैं । जो अपने अनेक ऊपर कहे हुए गुणों से भरी पूरी हैं और जो सब प्राणी मात्र व वनस्पतियों आदि का आधार हैं तथा जो ज्ञान विज्ञान व पुरुषार्थ से सुरक्षित हैं, उस मातृभूमि की हम सप्रेम स्तुति करते हैं । अर्थात् देशवासियों को वृक्षादि को नहीं काटना चाहिए । बल्कि वैज्ञानिक विधियों से उनका विकास कर अधिक मानवोपयोगी

बनाना चाहिए । साथ ही देशवासियों को राष्ट्रभूमि के प्रति आदर भाव रखना चाहिए ।

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः । पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥२८॥

—अथर्व०१२।१।२८।

उठते, बैठते, खड़े हुए अथवा दायें या बाएँ पैर से चलते हुए, किसी भी अवस्था में हों, हम अपनी मातृभूमि में दुःखी न हों और न किसी के दुःख का कारण बनें तथा न हम अपनी मातृभूमि को, सुरक्षा की कमी के कारण अपमानित होने दें। अर्थात् हमारी राज्य व्यवस्था ऐसी हो कि किसी को कोई कष्ट न हो तथा मातृभूमि की सुरक्षा के बारे में सभी सतर्क रहें ।

विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् । ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे ॥२९॥

—अथर्व०१२।१।२९।

विशेष रूप से अन्वेषण करने योग्य, सब कुछ सहन करने वाली, सब को आश्रय देने वाली, जिसे अनन्त शक्तिमान् परमेश्वर ने अपनी शक्ति से धारण किया है । जो बल बढ़ाने वाले घृत और अन्य पौष्टिक भोज्य पदार्थों को उत्पन्न करती है, लम्बी, चौड़ी और प्राणी मात्र के निवास योग्य है, उस भूमि से हम प्रार्थना करते हैं कि हे मातृभूमि! तुम हमें सहारा दो, आश्रय दो । अर्थात् राष्ट्रवासी लगातार अपने आचरण को शुद्ध करते रहें, उसमें राष्ट्रभक्ति भरते रहें । वे उदारमना और क्षमाशील हों ।

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः । पवित्रेण पृथिवि मोत्पुनामि ।।३०।।

—अथर्व०१२।१।३०।

हे हमारी मातृभूमि! तुम चारों ओर से हमारी शुद्धि के लिए निर्भय जल बहाती रहो । जो कोई हमारा अप्रिय व नाश करने की इच्छा या प्रयत्न करे, उसके साथ हम वैसा ही बर्ताव करें तथा पवित्र कर्मों से हम अपने को पवित्र करें । अर्थात् हम अपने चरित्र को पवित्रतम बनाते हुए शत्रु के घातक संकल्पों को विफल कर दें ।

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद्याश्च पश्चात् । स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः।।३१।।

—अथर्व०१२।१।३१।

हे हमारी मातृभूमि! तुम्हारी जो जो पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण की दिशाएँ हैं व अन्य चार उपदिशाएँ— आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य और ईशान आदि हैं और जो दिशाएँ तुम्हारे नीचे हैं व जो तुम्हारे पीछे हैं, उन सब दिशाओं में सभी मनुष्य तुम्हारे हितकारी हों । इसी प्रकार तेरे हित के लिए यत्न करते हुए हम भी उन सब का कल्याण करें। हम जहां भी रहें सुख से रहें और हमारा कभी पतन न होवे । अर्थात् हमारे राष्ट्र की चारों दिशाएँ सीमाएँ तथा आकाश भाग सब प्रकार से सुरक्षित रहें और हमारा राष्ट्र कभी अवनत न हो ।

मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत। स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन्परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम् ।।३२।। —अथर्व०१२।१।३२

हे मातृभूमि ! जो तुम्हारे पिछले भाग हैं वे हमारा नाश न करें, जो तुम्हारे पूर्व, उत्तर या नीचे भाग हैं वे हमारा नाश न करें। सब ओर हमारा कल्याण हो शत्रु हमारी क्रियाओं को न जानें और हमारे सबसे श्रेष्ठ नेता विद्वान्, शूरवीर हमारे शत्रुओं के नाश करने का प्रयत्न करते रहें। अर्थात् श्रेष्ठ नेतृत्व में हमारा राष्ट्र सब दिशाओं में सब प्रकार सुरक्षित रहे। ऐसा प्रत्येक राष्ट्रवासी प्रयत्न करता रहे।

यावत्तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥३३॥

—अथर्व०१२।१।३३।

हे मातृभूमि ! जब तक हम प्रकाश और ज्ञान की सहायता से तेरी बाहरी व भीतरी स्थिति सूक्ष्म दृष्टि से देखते रहें, तब तक हमारी बाहरी इन्द्रियाँ, नेत्र आदि और भीतरी बुद्धि अपना अपना काम करने में समर्थ रहे। अर्थात् राष्ट्रवासी मातृभूमि में होने वाली सामाजिक राजनैतिक व आर्थिक गतिविधियों को ध्यान से देखते रहें तथा राज्य व्यवस्था इतनी श्रेष्ठ हो कि सभी नागरिकों का स्वास्थ्य उत्तम रहे ताकि वे आजीवन राष्ट्रसेवा कर सकें।

यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम्।
उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत्पृष्ठीभिरधिशेमहे।
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ॥३४॥

—अथर्व०१२।१।३४।

हे मातृभूमि! जिस समय हम तेरे भक्त विश्राम करने के लिए दायें, बायें या चित्त किसी भी प्रकार सोवें, उस समय तुम हमें आश्रय दो। ताकि हम बेखटके हो के सोवें। उस अवस्था में कोई हम पर घात न करे। अर्थात् हे मातृभूमि!

हमारा राष्ट्र ऐसा हो कि सभी सुख चैन से रहें और किसी शत्रु के आघात का भय, किसी आर्थिक अभाव व राजनैतिक और सामाजिक समस्याओं के कारण हमारी नींद हराम न हो।

यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥३५॥

—अथर्व॰१२।१।३५।

हे मातृभूमि! हम तेरे जिस स्थान को भी खोदें, उसकी उर्वरा शक्ति नष्ट न हो बल्कि उसकी उपजाऊ शक्तिं शीघ्र विकसित हो जाए। हे अन्वेषणीय मां तन मन तुम्हारे लिए अर्पित है । हम किसी भी प्रकार तुम्हारे मर्म स्थल को चोट न पहुचाएँ। अर्थात् हम मातृभूमि की खनिज सम्पदा का उपयोग करते हुए, उद्योग धन्धे लगाते हुए अपनी राष्ट्रभूमि की मृदा को किसी भी प्रकार अपक्षीण, अपवित्र तथा प्रदूषित न करें तथा कृषि एवं खनिज विज्ञान की तकनीकों द्वारा भूमि की उर्वरता, गुणवत्ता एवं खनिजीय सम्पदा को सुरक्षित रखें और पर्यावरण को प्रदूषित न होने दें ।

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम्॥३६॥

--अर्थव॰१२।१।३६।

हे मातृभूमि ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त ये छः ऋतुएँ होने का उत्तम गुण तुम्हारे में ही है । इनके दिन और रात सब भांति सुहावने रहें और समय से फल-फूल अन्नादि देकर अनेक वर्षों तक हमारी कामनाओं को पूर्ण करें । अर्थात् मौसम विज्ञान की दृष्टि से विभिन्न ऋतुओं में उचित फल, फूल, सब्जी, अन्नादि फसलें उगाकर लाभान्वित हों ।

याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्वन्तः । परा दस्यून्ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम्। शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ।।३७।। —अथर्व०१२।१।३७।

जो शुद्ध करने वाली एवं विशेष खोजने योग्य है, जो हिलती हुई चलती है, जो मेघों में बिजली के स्वरूप में अग्नि है वह उसमें है । ऐसी हमारी मातृभूमि सज्जनों को दुख देने वाले दुष्टों का नाश करती है तथा शत्रुनाशक वीरों को अपने में धारण करती है । अर्थात् राष्ट्र में सांप की भांति दुष्ट प्रकृति के लोगों का नाश किया जाए ।

यस्यां सदो हविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते ।
ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः ।
युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ।।३८।।
—अथर्व०१२।१।३८।

जिस मातृभूमि में सब के अपने घर हैं, जिसमें हवन करने के पदार्थ सुरक्षित रह सकते हैं, जिसमें यज्ञ-स्तम्भ रचे जाते हैं जिसमें यजुर्वेद के जानने वाले ब्राह्मण यज्ञ करने वाले और कराने वाले हैं, जिसमें ऋग्वेद और सामवेद के जानने वाले ब्राह्मण ब्रह्मा बन परमात्मा की उपासना करते हैं, जिसमें समय पर काम करने वाले प्रजाजन इन्द्र को सोम का पान कराने के लिए विविध कर्मों में नियुक्त होते हैं। अर्थात् राष्ट्र के प्रत्येक निवासी का अपना निजी मकान हो, वे आस्तिक हों, धर्माचरण से जीवन बिताते हों। विद्वान् हों तथा समय पर काम करने वाले हों ।

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः ।
सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ।।३९।।
—अथर्व०१२।१।३९।

जिस हमारी मातृभूमि का भूतकाल में निर्माण करने वाले, विविध कर्मों का अनुष्ठान करने वाले, नई रचनाओं के करने वाले, हमारे पूर्वज तत्त्वदर्शी ऋषि लोग, सत्पुरुषों का पालन करने वाले यज्ञ और तप से युक्त होकर उत्तम वाणियां बोलते रहे हैं, जिसमें हमारे पूर्वज ऋषि लोग, पांच ज्ञानेन्द्रियां, मन और आत्मा जिसमें होता रूप में बैठते हैं। उस मातृभूमि की हम वन्दना करते हैं । अर्थात् राष्ट्रवासी प्राचीन ऐतिहासिक श्रेष्ठ विद्वानों, धर्मात्माओं और तपस्वियों के जीवन, कर्म एवं विद्वत्ता से प्रेरणा लेकर राष्ट्र-निर्माण कार्य में जुट जावें ।

सा नो भूमिरादिशतु यद्धनं कामयामहे ।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥४०॥

—अथर्व०१२।१।४०।

हमारी मातृभूमि जिस सुख की हम कामना करें वह हमें दे । ऐश्वर्य और धन सम्पन्न लोग अपने सामर्थ्य और धनादि से वीरों व राष्ट्रभक्तों की सहायता करें जो शत्रु का नाश करने और राष्ट्ररक्षा व समृद्धि के लिए आगे बढ़ें अर्थात् धनवान् लोगों को राष्ट्रहित में आर्थिक सहयोग देना चाहिए तथा राष्ट्रनेताओं को राष्ट्रोन्नति के लिए उचित मार्ग-दर्शन करना चाहिये यानी सभी देशवासी अपना अपना राष्ट्ररक्षा में अधिकतम योगदान करें ।

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलवाः ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।
सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु॥४१॥

—अथर्व०१२।१।४१।

जिस हमारी मातृभूमि में विविध वाणियों के बोलने

वाले मनुष्य आनन्द से गाते हैं, नाचते हैं, जहाँ बधाइयाँ बजती हैं। वीर लोग वीरता से उत्साह भरे राष्ट्ररक्षा के लिए युद्ध करते हैं, दुन्दुभि बजाते हैं। वह हमारी मातृभूमि हमारे शत्रुओं को नाश कर हमें शत्रु रहित करे। अर्थात् राष्ट्र के लोग तभी नाचते गाते प्रसन्न रह सकते हैं जब राष्ट्र शत्रु रहित हो। वे रासरंग व रंगरेलियों और व्यसनों में न फंसे रहें, परन्तु वे राष्ट्र रक्षा के लिए सभी चुनौतियों का सामना करने के लिए सदैव तैयार रहें। राष्ट्र भावना से प्रेरित हो राष्ट्ररक्षा के लिए युद्ध के लिए तैयार रहें।

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ।।४२।। –अथर्व०१२।१।४२।

जिस हमारी मातृभूमि में अनेक प्रकार के गेंहू, जौ, चावल आदि खाद्यान्न उत्पन्न होते हैं, जहां विद्वान्, शूरवीर, व्यापारी, कारीगर व अन्य प्रकार के मनुष्य मिलकर आनन्द पूर्वक रहते हैं, जिस भूमि पर नियमित समय पर वर्षा से पर्याप्त धान्यादिक उत्पन्न हो लोगों का पालन होता है, उस मातृभूमि को नमस्कार है। अर्थात् राष्ट्र उपयोगी कार्य करके राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति करनी चाहिए।

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या वि कुर्वते। प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु ।।४३।।
–अथर्व०१२।१।४३।

जिस मातृभूमि में व्यवहार कुशल शिल्पियों, इञ्जीनियरों द्वारा अनेकों नगर बनाए गए हैं, जिसके विभिन्न प्रान्तों व क्षेत्रों में विभिन्न उद्योग धन्धे कार्य करते हैं, जिसमें सब रत्नादि छिपे हैं, तथा अन्नादि पैदा होते हैं, उसका सम्राट् या प्रशासक उसे प्रत्येक दृष्टि से रमणीय व सुन्दर बनाये।

अर्थात् राष्ट्रव्यवस्था ऐसी हो कि सारे राष्ट्र में सुन्दर नगर हों और उनमें सभी सुविधाएँ हों तथा नागरिकों को उद्योग धन्धों के विकास के लिए सभी सुविधाएँ साधन और अवसर प्राप्त हों ।

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे । वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ।।४४।। —अथर्व०१२।१।४४।

जिस हमारी मातृभूमि में रत्नों, हीरा, पन्ना, सोना, चांदी आदि की बहुत सी खानें हैं, जो धन देने वाली, दान करने वाली देवी स्वरूपा है, वह शुभचित्त होकर हमें धन स्वर्णादि दे । अर्थात् हमारे राष्ट्र में विपुल सम्पदा है, वैज्ञानिक और प्रशासक मिलकर उनका सदुपयोग कर राष्ट्रवासियों को धन सम्पन्न करें ।

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् । सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ।।४५।। —अथर्व०१२।१।४५।

हमारी मातृभूमि बहुत प्रकार के धर्मों को मानने वाले और अनेक भाषा बोलने वाले जन समुदाय को ऐसे निश्चित भाव से धारण करती है कि जैसे सब एक घर में रहते हैं और दुधारु गाय के समान सब को दूध देती है । ऐसी हमारी मातृभूमि हमें भी उसी तरह धन दे। अर्थात् विभिन्न धर्मों को मानने वाले व विभिन्न भाषाभाषी लोग राष्ट्रभूमि में मिलकर ऐसे रहें जैसे एक परिवार के सदस्य विभिन्न कर्म करते हुए एक ही घर में प्रेम से रहते हैं । उन्हें अपनी मातृभूमि को एक घर के समान समझना चाहिए। जैसे गाय अपने सब बछड़े-बछड़ियों को समान भाव से दूध पिलाकर पालती है, उसी प्रकार राष्ट्र के

निवासियों को धर्म-भेद व बोली भेद को भुलाकर माता रूपी राष्ट्रभूमि की सेवा व रक्षा करनी चाहिए और मिलकर रहना चाहिए । मातृभूमि की सेवा की तुलना में सभी बातें गौण हैं।

यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहाशये । क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः। सर्पन्मोपसृपद्यच्छिवं तेन नो मृड ॥४६॥ —अथर्व०१२।१।४६।

हे मातृभूमि ! तेरे बिलों में सांप या बिच्छु या ऐसे जीव जिनके काटने से दाह पैदा होता है या जो शीत व ज्वर उत्पन्न करते हैं । ऐसे कीड़े जो बिलों में पड़े सोते रहते हैं वे बरसात के मौसम में निकलते हैं जो कम्पायमान होते हुए रेंगते हैं ऐसे भंयकर विषैले जीव हमें कभी स्पर्श न करें । जो पदार्थ हमारे लिए हितकारी और कल्याणकारी हैं वे सदैव हमारे पास रहें। अर्थात् राज्य-व्यवस्था व सफाई ऐसी होनी चाहिए कि विषैले कीड़े मकोड़े जीव जन्तु मनुष्यों की वस्तुओं के आस-पास न रह पावें ।

ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे। यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड ॥४७॥

—अथर्व०१२।१।४७।

हे मातृभूमि! जो तुम्हारे मनुष्यों तथा रथ छकड़े बैलगाड़ी आदि चलने के बहुत से रास्ते हैं, जिन पर भले बुरे सभी प्रकार के मनुष्य चलते फिरते हैं, जिन पर अन्न आदि पदार्थ ढोए जाते हैं, वे मार्ग शत्रु रहित निर्भय एवं सुरक्षित हों और जो कल्याणकारी मार्ग हों उनसे हमें सुख दो । अर्थात् राष्ट्र के सभी यातायात के मार्ग, सड़क आदि सुन्दर तथा चोर डाकू लुटेरों और शत्रुओं से सुरक्षित एवं निर्भय हों । वे सब

के लिए समान रूप से प्राप्त हों ।

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः ।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय विजिहीते मृगाय ।।४८।।

—अथर्व॰१२।१।४८।

हे मातृभूमि! तुम भारी-भारी पर्वतों व बड़े भौतिक पदार्थों के साथ-साथ उच्चकोटि के विद्वान् गुणवान् एवं बुरे पापियों को भी धारण करती हो । दोनों के भरण को सह लेती हो । अच्छा जल बरसाने वाले मेघ से युक्त सूर्य जिसकी अपवित्रता को अपनी किरणों से हटा देता है, ऐसी हमारी मातृभूमि विशेष प्रकार से सूर्य के साथ-साथ जाती है । अर्थात् राष्ट्रवासियों का मानसिक व आध्यात्मिक विकास हो । उनमें सहनशीलता बढ़े तथा उनमें सूर्य जैसी तेजस्विता एवं पाप निवारक वृत्तियों का विकास हो। ।

ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति। उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत् ।।४९।। —अथर्व॰।१२।१।४९।

हे मातृभूमि! जो तेरे जंगलों में रहने वाले पशु और हिरन हैं, जो वन में रहने वाले शेर और बाघ घूमते फिरते हैं, जो मनुष्यों को खा जाते हैं, उन तीक्ष्ण स्वभाव वाले भेड़ियों, दुष्ट चाल चलने वाले रीछों और छिपकर प्रहार करने वाले अन्य जानवरों को हम से दूर करो । अर्थात् कोई जंगली पशु मनुष्यों की बस्तियों के बीच आकर लोगों को हानि न पंहुचाने पाए । ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए ।

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः ।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय ।।५०।।

—अथर्व॰१२।१।५०।

हे मातृभूमि! जो हिंसक व आततायी हमारे वध करने को उद्यत हैं, कर्महीन व आलसी हैं, जो निर्धन हैं, दूसरों के धन को हरने वाले हैं, मांसाहारी हैं, राक्षसी वृत्ति के हैं, इन सब को हम से दूर हटाओ। अर्थात् राष्ट्र में कोई मनुष्य आलसी, निर्धन, दुराचारी मांसाहारी और पाशविक वृत्ति का न हो, ऐसी राष्ट्रव्यवस्था होनी चाहिए।

यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि।
यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान्।
वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ।।५१।। —अथर्व०१२।१।५१।

हमारी वह मातृभूमि है जहाँ दो पांव वाले हंस गरुड़ आदि पक्षी उड़ते हैं। आकाश में बहने वाली हवा धूल उड़ाती हुई, पेड़ों को जड़ से उखाड़ती हुई बहती है। जहाँ उस वायु की गति को प्रकाश अनुसरण करता हुआ चलता है। अर्थात् आकाश में उड़ने वाले पक्षियों को सताना नहीं चाहिए।

यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि। वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनि धामनि ।।५२।। —अथर्व०१२।१।५२।

जिस हमारी मातृभूमि में तमोमय अन्धकार और प्रकाशमय दिन, इकट्ठे दिन और रात होते हैं। जिस विस्तृत भूमि में उनकी एक सी व्यवस्था रहती है। उस मातृभूमि में हम हितकर स्थानों में सुख से रहें।

द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः।।५३।।
—अथर्व०१२।१।५३।

प्रकाशमान अन्तरिक्ष, पृथिवी तथा आकाश और पृथ्वी के बीच अग्नि और सूर्य, सब प्रकाश करने वाले देव तथा

विद्वान् लोगों ने ये सब मुझ को धारणा शक्ति वाली बुद्धि दी है । अर्थात् हमें अध्ययन, मनन, चिन्तन एवं विद्वानों के सत्संग से बुद्धि का विकास करना चाहिए ।

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ।।५४।।

—अथर्व०१२।१।५४।

अपनी इस मातृभूमि पर मैं विरोधी शक्तियों का पराभव करने वाला हूँ । प्रशंसनीय कीर्ति वाला हूँ । सब ओर से सब विरोधी शक्तियों को नष्ट करने वाला हूँ अर्थात् हमें अपनी मातृभूमि के लिए सब तरह के कष्ट सहन करने को तैयार रहना चाहिए, और सब प्रकार से शत्रुओं को नष्ट करने का प्रयास करना चाहिए ।

अदो यद् देवि प्रथमाना पुरस्ताद् देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम् । आ त्वा सुभूतमविशत् तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्त्रः ।।५५।। —अथर्व०१२।१।५५।

हे मातृभूमि! पहले के लोग जब तुम्हारी स्तुति करते थे उस समय तुम्हारा महत्त्व और कीर्ति चारों दिशाओं में जाती थी। वही तुम्हारा महत्त्व अब भी वैसा ही फैले । अर्थात् राष्ट्र की कीर्ति व यश, विद्वानों वैज्ञानिकों एवं विशेषज्ञों के सतत प्रयास से होती है । अतः ऐसे विद्वानों का निर्माण लगातार होते रहना चाहिए ।

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधिभूम्याम् ।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ।।५६।।

—अथर्व०१२।१।५६।

हे हमारी मातृभूमि ! जो गांव व नगर जो वन, जो राजसभा, न्यायसभा, धर्मसभा आदि जो युद्धभूमि जो बड़ी-बड़ी परिषदें,

हमारी भूमि में हैं, उन सब स्थानों में हम तुम्हारे विषय में हितकारी बात ही करें। अर्थात् हम कहीं भी हों, कोई भी विषय हो सर्वत्र मातृभूमि का गुणगान करें। राष्ट्रहित की ही बात कहें।

अश्व इव रजो दुधुवे वि तान् जनान् य आक्षियन् पृथिवीं यादजायत । मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ।।५७।। —अथर्व०१२।१।५७।

युद्ध में विजयी हो, जहाँ पर सेना के घोड़ों के चलने से धूलि उड़कर मनुष्यों के चित्तों को प्रसन्न करती है, अथवा जब किसी विशेष कारण के लिए मनुष्य एकत्रित होते हैं। तब उस संगठन से एक विलक्षण शक्ति उत्पन्न होती है। जो सब को आनन्दकारी, सब का संरक्षणकारी और पोषक औषधि आदि देने वाली होती है। इसलिए उसे राष्ट्रभक्त सदैव ध्यान में रखें। अर्थात् राष्ट्र-भक्तों के संगठन से शक्ति और शक्ति से विजय व प्रसन्नता अर्जित करनी चाहिए।

यद्वदामि मधुमत्तद्वदामि यदीक्षे तद्वनन्ति मा ।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान्हन्मि दोधतः।।५८।।
—अथर्व०१२।१।५८।

मातृभूमि के विषय में मैं जो कुछ बोलता हूँ वह मधु से भरा हुआ बोलता हूँ जो कुछ देखता हूँ मैं उससे लाभ उठाता हूँ। मैं तेजस्वी हूँ, वेगवान् प्रगतिशील हूँ तथा हम पर क्रोध करने वाले शत्रुओं को मैं मार गिराता हूँ अर्थात् हम सदैव अपने राष्ट्र के हित में मीठा बोलें, पुरुषार्थी बनें और राष्ट्र शत्रुओं को नष्ट कर दें।

शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती ।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ।।५९।।
—अथर्व०१२।१।५९।

शान्ति कारक सुगन्धियुक्त सुख देने वाली, अन्नदा, बहुत जल वाली ऐसी हमारी मातृभूमि हमें भोज्य पदार्थ दे। अर्थात् हम खाद्य पदार्थों में आत्मनिर्भर बनें। जल स्त्रोतों का समुचित प्रबन्ध कर उन्हें प्रदूषण से बचावें एवं सुख शान्ति से रहें '

यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम्।
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन्मातृमद्भ्यः॥६०॥
—अथर्व० १२।१।६०।

जहाँ सब तरह के उद्योग करने वाले पुरुषार्थी लोग मातृभूमि की सेवा के लिए कटिबद्ध रहते हैं, वहाँ मातृभूमि में गुप्त या दुर्लभ स्थान से भी भोज्य पदार्थ उपयोग के लिए प्राप्त हो जाते हैं। यानी उनके उपयोग के सभी पदार्थ सहजता से मिल जाते हैं अर्थात् राष्ट्रवासियों को आत्मत्याग एवं पुरुषार्थ से कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी खाद्यान्न उगाने एवं जीवन के अन्य साधन जुटाने का प्रयास करना चाहिए और राष्ट्रभूमि को अपनी माता के समान पूजनीय वन्दनीय मानना चाहिए राष्ट्रभूमि केवल भूखण्ड नहीं है। बल्कि कठिन परिस्थितियों में भी पालन पोषण करने वाली माँ है।

त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना।
यत् त ऊनं तत्त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य॥६१॥
—अथर्व० १२।१६१।

हे मातृभूमि! तुम लोगों को इच्छित पदार्थ देने वाली, अविनश्वर, किसी को दुःख न देने वाली, विस्तृत, लम्बी चौड़ी और पुरुषार्थियों को ख्याति देने वाली हो, स्तुति योग्य हो तुम में जो अच्छी तरह बोया जाता है वह खूब उपजता है। ऐसी तुम हो फिर भी तुम में जो कमी है उसकी पूर्ति सृष्टि के आदि में प्रकट हुआ प्रजाओं का स्वामी व रक्षक परमात्मा

और सम्राट् करता रहे । अर्थात् राष्ट्र में जो भी अभाव हों उनको विद्वान्, प्रजाजन एवं प्रशासक मिलकर देशवासियों के लिए उपलब्ध करावें ।

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम।।६२।।

—अथर्व०१२।१।६२।

हे मातृभूमि ! तुम्हारे में उत्पन्न सब पदार्थ रोग रहित, क्षयरोग आदि से रहित, हमारे पास रहने वाले हों । हमारी आयु लम्बी हो हम ज्ञान-विज्ञान युक्त हों और हम मातृभूमि के लिए सब कुछ त्याग-बलिदान देने को तैयार रहें । अर्थात् हम सदैव मातृभूमि के हित में तत्पर रहें तथा उसकी रक्षा के लिए प्राणों की बाजी भी लगाने को तैयार रहें ।

भूमे मातर्निधेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ।।६३।।

—अथर्व०१२।१।६३।

हे मातृभूमि! मुझे मंगलकारक बुद्धि से सुप्रतिष्ठित कर। तेरे विषय में प्रतिदिन चिन्ता करने वाले सूक्ष्म विचारकों, दूरदर्शी मनुष्यों और मुझे यश कीर्ति व ऐश्वर्य से सम्पन्न कर । अर्थात् देशवासियों को ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा-दीक्षा से अपनी व राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति करनी चाहिए । राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत हो राष्ट्रभूमि के लिए बलिदान तक होने का संकल्प करना चाहिए । राष्ट्रीय भावना ही राष्ट्र-शक्ति है, वही उसका रक्षा कवच है ।

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः । विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्।।१।। —अथर्व०७।६।१।

मातृभूमि ही हमारा स्वर्ग है । वही अन्तरिक्ष है । वही हमारी माता, पिता, पुत्र सब कुछ है । वही सब देवमयी है। और सब प्रजा भी वही है । बना हुआ और बनने वाले सभी पदार्थ हमारे लिए मातृभूमि ही हैं । अर्थात् हमारी मातृभूमि सब प्रकार कल्याणकारिणी उपासना योग्य, पांचों प्रकार के मनुष्यों की निवास-स्थली, सत्कर्मों की प्रेरणा देने वाली, सब की रक्षक एवं उत्साहवर्धिनी है ।

महीमूषु मातरं सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हवामहे ।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।।२।।
—अथर्व०७।६।२।

मातृभूमि उत्तम पुरुषार्थी मनुष्यों की रक्षा करती है । सत्य की रक्षक वही है । उसी मातृभूमि के लिए अनेक प्रकार के क्षात्रतेज प्रकाशित होते हैं । मातृभूमि क्षीण न करने वाली है, विशाल सुख देने वाली है । हमें उत्तम मार्ग पर चलाने वाली और हमें अन्न देने वाली है । मातृभूमि की रक्षा के लिए हम उसकी प्रशंसा करते हैं । अर्थात् मातृभूमि उन्हीं की रक्षा करती है और उन की शत्रुओं से रक्षा करती है । सुरक्षित मातृभूमि ही सुखदात्री एवं कल्याणकारिणी होती है।

स्योना पृथिवी नो भवानृक्षरा निवेशनी ।
यच्छा नः शर्म सप्रथाः ।। —यजु०३६।१३।

हे राष्ट्रभूमि! तू हम सब के लिए सुखदायक, कष्टरहित और रहने योग्य उत्तम स्थान देने वाली हो । हम सब के लिए अत्यन्त विस्तीर्ण होकर सुखकारी हो । अर्थात् हमारी राष्ट्रभूमि सदैव सुरक्षित विस्तार वाली एवं सुखदायी होनी चाहिए ।

अस्मे वो अस्त्विन्द्रियमस्मे नृम्णमुत क्रतुरस्मे वर्चांᳬसि सन्तु वः। नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्या इयं ते राड्यन्ताऽसि यमनो ध्रुवोऽसि धरुणः। कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥४॥ —यजु०९।२२।

हे मातृभूमि ! तुम्हारा समस्त ऐश्वर्य हमें प्राप्त हो । तुम्हारा धन और कर्म सामर्थ्य हमें प्राप्त हो । तुम्हारा तेज हमें प्राप्त हो। हे मातृभूमि! तुम्हें नमस्कार है । पृथिवी माता के लिए हमारा आदर है । यह तेरी शासन-शक्ति है । तू संचालक है । तू स्थिर है । तू सब प्रकार से नियमन करने वाला ध्रुव और सब का आश्रय-स्थान है । तुझ को खेती के लिए, हमारे योगक्षेम के लिए, जगत् के कल्याण के लिए, राष्ट्र में ऐश्वर्य वृद्धि के लिए तथा तुझ को प्रजा-पालन के लिए स्तुति करता हूँ । अर्थात् राष्ट्र में स्थिरता हो, समृद्धि हो इसके लिए हम लगातार प्रयास करें ।

ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः ।
ये वा सहस्रदक्षिणास्ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥५॥
—ऋ०१०।१५४।३।

जो शूरवीर युद्धों में अपने प्राणों की बलि देकर वीर गति को प्राप्त हुए हैं । वो जो लोग नाना तरह के दान देकर अपने को संसार में अमर कर गए हैं । ऐसे लोगों को हे मृतात्मा ! तू प्राप्त हो, तेरी सद्‌गति हो । अर्थात् राष्ट्रभूमि के बलिदानियों की सद्‌गति हो ।

ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः। सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥६॥ —ऋ०५।५९।६।

इन वीरों में कोई भी ऊंचा, नीचा या मंझला नहीं है, वे सभी समान हैं। उन्नति के लिए शत्रु का मिल-जुलकर भेदन कर ऊपर उठने वाले हैं। वे सभी कुलीन हैं और मातृभूमि को मातृवत् आदर भरी दृष्टि से देखते हैं। हमारी लालसा है कि वे हमारे मध्य आकर निवास करें। अर्थात् मातृभूमि के रक्षक वीरों का सभी को सम्मान करना चाहिए।

भारतीळे सरस्वती या वः सर्वा उपब्रुवे। ता नश्चोदयत श्रिये ॥७। —ऋ०१।१८८।८।

मातृभूमि, मातृभाषा और मातृसंस्कृति इन तीनों की मैं आराधना करता हूँ वे सब हमें ऐश्वर्य की तरफ प्रेरित करें। अर्थात् ये तीनों राष्ट्र को ऐश्वर्यशाली बनाती हैं।

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः। बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥८॥ —ऋ०।५।५।८।

मातृभाषा, मातृसंस्कृति और मातृभूमि तीनों देवियाँ कल्याणकारी हैं। अतः ये किसी की हिंसा न करती हुई यज्ञों एवं राष्ट्र हितकारी कार्यों को सम्पन्न करें। अर्थात् ये तीनों देवियाँ राष्ट्रोन्नति की आधार हैं।

दैवा होतार ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वयामि गृणत गृणता नः स्विष्टये। तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं संदन्तामिडा सरस्वती मही भारती गृणाना ॥९॥ —अथर्व०५।२७।९।

हे दिव्य होता गण ! हमारे ऊंचे यज्ञ की अग्नि की जिह्वा के द्वारा प्रशंसा करो और हमारी उत्तम इष्टि के लिए प्रशंसा करो। मातृभाषा, मातृसभ्यता और पोषण करने वाली राष्ट्रभूमि ये तीनों देवियाँ इस यज्ञ में विराजें। अर्थात् राष्ट्र निर्माण रूपी यज्ञ में ये तीनों देवियाँ अपना सम्पूर्ण योगदान

दें ताकि हम अपने इच्छित लक्ष्य को पा सकें ।

ध्रुवेयं विराण्नमो अस्त्वस्यै शिवा पुत्रेभ्य उत मह्यमस्तु ।
सा नो देव्यदिते विश्ववार इर्य इव गोपा अभिरक्ष पक्वम्।।१०।।
—अथर्व०१२।३।११।

यह मातृभूमि ध्रुव दिशा है । यह अन्न देने वाली पृथिवी है। इस मातृभूमि को मेरा नमस्कार है । यह मुझे व मेरी सन्तानों को सुख देने वाली हो, शुभ हो तथा हमारी उत्तम रक्षा करे। अर्थात् जो मातृभूमि हमारी पालनहार है सुखदात्री है । अर्थात् उसके प्रति हमारा कर्त्तव्य है कि हम सुयोग्य पुत्रों के समान उसकी सब प्रकार से रक्षा करें ।

३. स्वराज्य

(स्वराज्य सूक्त)

इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम् । शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम्।।१।।
—ऋ०१।८०।१।

हे बल युक्त शस्त्रास्त्र विद्या से सम्पन्न सभापति! जैसे सूर्य मेघ को जैसा चारों वेदों को जानने वाला अपने पराक्रम से विस्तृत भूमि के मध्य आनन्द और ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने वाले में अपने राज्य का आदर सत्कार करते हुए इस प्रकार वृद्धि करता है वैसे ही तू राष्ट्रभूमि से सभी शत्रुओं को नष्ट कर दे। अर्थात् विद्वान् लोग राष्ट्र-शक्ति को बढ़ाने का प्रयत्न करें, नाना साधनों से क्षात्र-शक्ति को बढ़ावें और देशद्रोहियों को नष्ट करके या अपने अधिकार में करके देश की स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण बनाने की कोशिश करें ।

स त्वामदद् वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः। येना वृत्रं निरद्भ्यो जघन्थ वज्रिन्नोजसार्चन्ननु स्वराज्यम॥२॥
—ऋ०१।८०।२।

हे वज्रधारी इन्द्र या सभापति! उस श्येन द्वारा लाये गये क्रूर छानकर निचोड़े, बल बढ़ाने वाले आनन्ददायक सोम ने तुझे आनन्दित किया जिससे तू ने अपने स्वराज्य का सत्कार करते हुए अपने बल से शत्रु को मारकर उसे दूर भगा दिया अर्थात् मनुष्यों को चाहिये कि जिन पदार्थ और कामों से प्रजा की उन्नति हो वैसा करें और राष्ट्र को घेरने वाले शत्रुओं को नष्ट किया जाए ।

प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नियंसते । इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥३॥
—ऋ०१।८०।३।

हे परम सुखकारक इन्द्र ! जैसे सूर्य का किरण समूह मेघ को छिन्न-भिन्न करता और जलों को नियम में रखता है वैसे ही जो आपके शत्रु हैं उन्हें हनन करके अपने राज्य का सत्कार करते हुए धन को प्राप्त हो । बल को चारों ओर से बढ़ाओ । शरीर और आत्मा के बल से सुदृढ़ हो तथा विजय प्राप्त करो । इस प्रकार आपका पराजय न होगा । अर्थात् हे वीर ! आगे बढ़ हमला कर, चारों ओर से शत्रु को घेर कर युद्ध कर । तेरे सामर्थ्य का उपयोग मानव हित में ही हो । तू कभी उन पर अत्याचार न कर ।

निरिन्द्र भूम्या अधिवृत्रं जघन्थ निर्दिवः । सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥४॥
—ऋ०।१।८०।४।

हे इन्द्र! अपने स्वराज्य का आदर सत्कार करते हुए

तू भूमि और दिव् लोक में शत्रु को निःशेष होने तक नष्ट कर । तू इन वीरों को अपने साथ रहने वाले जीवन धारक जलों को बहने के लिए छोड़ दे । अर्थात् हे वीर ! अपने देश की और अपनी स्वतन्त्रता के महत्त्व को समझ और उसकी हर तरह से रक्षा कर । तेरे देश को पराधीन बनाने की इच्छा करने वाले जो भी शत्रु राष्ट्रभूमि में हों उन्हें तू नष्ट कर अपनी प्रजा के प्राणों की रक्षा कर ।

इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीळितः। अभिक्रम्याव जिघ्नतेऽपः सर्माय चोदयन्नर्चन्ननु स्वराज्यम्।।५।।
—ऋ०१।८०।५।

हे विद्वन् जैसे सूर्य किरणों से मेघ के जलों को आक्रमण करके मेघ के शिखरों को छेदन करता है वैसे ही अपने राज्य का सत्कार करता हुआ राजा हनन करने वाले, प्राप्त हुए शत्रु के पराजय के लिए अपनी सेनाओं को प्रेरणा देता हुआ क्रुद्ध शत्रु के बल के आक्रमण से सेना को छिन्न-भिन्न पाकर शत्रु पर क्रोध करे । अर्थात् हे वीर ! तेरी प्रजाओं पर अत्याचार करके उन्हें भयभीत करने वाले शत्रुओं के उत्तम भाग पर तू आक्रमण कर और स्वराज्य की रक्षा कर ।

अधिसानौ नि जिघ्नते वज्रेण शतपर्वणा । मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छत्यर्चन्ननु स्वराज्यम्।।६।।
—ऋ०१।८०।६।

आनन्दित हुआ इन्द्र अपने स्वराज्य की सदा पूजा करता हुआ सैकड़ों धाराओं वाले वज्र से इस वृत्र की ठुड्डी पर प्रहार करता है और मित्रों के लिए अन्न की प्राप्ति का मार्ग ढूंढ़ना चाहता है । अर्थात् तेजस्वी राजा सदा अपनी प्रजा के हित करने के मार्ग ढूंढ़ता रहे ।

इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन् वीर्यम् ।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम्।।७।

—ऋ०१।८०।७।

हे मेघ शिखरवत् पर्वतादि युक्त स्वराज्य से भूषित उत्तम शस्त्रास्त्रों से युक्त सभेश तेरा ही पराक्रम उत्कृष्ट है । जिस कारण तू अपने स्वराज्य की पूजा करते हुए ढूंढ़कर पकड़ उस कपटी शत्रु को माया से मार । अर्थात् शत्रु यदि छल कपट से आक्रमण करता है तो उसके साथ वैसा ही व्यवहार कर उसे नष्ट कर देना चाहिए । सेनापति या राष्ट्राध्यक्ष के लिए यह नीति उचित है ।

वि ते वज्रासो अस्थिरन्नवतिं नाव्या अनु ।
महत् त इन्द्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हितमर्चन्ननु स्वराज्यम्।।८।।

—ऋ०१।८०।८।

हे इन्द्र! तेरे वज्र वृत्र से घिरे हुए नव्वे नावों से तरने योग्य जल के समीप के विविध स्थानों में ठहरे हुए थे । तेरा पराक्रम महान् है और तेरी भुजाओं में महान् बल है । इसलिए तू अपने स्वराज्य का सत्कार करते हुए राज्य लक्ष्मी को प्राप्त कर । अर्थात् जो विद्वान् प्रशासक राज्य बढ़ाने की इच्छा करें वे बड़ी अग्नि यन्त्र चालित नौकाओं आदि से देश देशान्तरों में आ-जाकर व्यापार आदि से राष्ट्र को समृद्ध करें तथा राष्ट्र को अपने पराक्रम से सुरक्षित भी रखें ।

सहस्त्रं साकमर्चत परिष्टोभत विंशतिः ।
शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ।।९।।

--ऋ०१।८०।९।

हे मनुष्यो ! तुम लोग सभाध्यक्ष जो अपने राज्य का सत्कार करता हुआ विराजमान है । उस का आश्रय लेकर अपने

राज्य को सब प्रकार से अधर्माचरण से मुक्त करो । परस्पर मिल कर असंख्यात गुणों युक्त पुरुषों सहित राष्ट्र अर्चना करो। बीसों मिलकर यशस्वी इन्द्र सभाध्यक्ष की स्तुति करो तथा हे इन्द्र! अपने स्वराज्य की पूजा करते हुए तू उसका सेवन कर अर्थात् हम हजारों की संख्या में इकट्ठे राष्ट्र आराधना करें तथा राष्ट्रीय भावना जागृत करें ।

इन्द्रो वृत्रस्य तविषीं निरहन्त्सहसा सहः। महत् तदस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्वाँ असृजदर्चन्ननु स्वराज्यम् ।।१०।।

—ऋ०१।८०।१०।

जो सभाध्यक्ष विद्युत् रूप सूर्य मेघ को नष्ट करने के समान शत्रु को मारता हुआ निरन्तर हनन करता है । तथा जो बल से सूर्य जैसे मेघ के बल को वैसे शत्रु के बल को निरन्तर हनन करता हुआ और अपने राज्य का सत्कार करता हुआ सुख को उत्पन्न करता है। वही इस का बड़ा पुरुषार्थ रूप बल के सहन का कारण है । अर्थात् स्वराज्य प्रेमी राष्ट्र-अध्यक्ष को चाहिए कि राष्ट्र में महान् सैनिक शक्ति हो । शस्त्रास्त्रों का पर्याप्त उत्पादन व भण्डार हो, आधुनिकतम हथियार हों, शक्तिशाली राष्ट्र ही स्वराज्य बनाए रख सकता है ।

इमे चित् तव मन्यवे वेपेते भियसा मही । यदिन्द्र वज्रिन्नोजसा वृत्रं मरुत्वाँ अवधीरर्चन्ननु स्वराज्यम्।।११

—ऋ०१।८०।११।

हे शत्रु विद्या में निपुण सभाध्यक्ष राजन् ! जैसे सूर्य के आकर्षण और विकर्षण से ये लोक काँपते हैं । वैसे ही आपके सैन्य बल से व आपके भय से, क्रोध की शान्ति के लिए शत्रु लोग अनुकूल हो के काँपते रहते हैं । तथा जैसे तीव्र वायु के वेग से युक्त सूर्य मेघ को मारता है वैसे ही स्वराज्य

का सत्कार करता हुआ तू शत्रु को मारा कर । अर्थात् राजा राष्ट्र में इतनी शक्ति उत्पन्न करे कि शत्रु उसकी शक्ति से काँपता, भयभीत होता रहे । आक्रमण करने का साहस न करे क्योंकि राष्ट्र ही स्वराज्य का आधार है ।

न वेपसा न तन्यतेन्द्रं वृत्रो विबीभयत् ।
अभ्येनं वज्र आयसः सहस्त्रभृष्टिरायतार्चन्ननु स्वराज्यम्॥१२॥

—ऋ०१।८०।१२

हे सभापते ! अपने राज्य का सत्कार करता हुआ तू जैसे मेघ वेग से सूर्य को भयभीत नहीं कर सकते और न ही मेघ से उत्पन्न बिजली सूर्य को प्रभावित कर सकती है । क्योंकि मेघ के ऊपर आग्नेय अस्त्र तुल्य वज्र रूप तीव्र सूर्य की किरणें चारों तरफ फैली होती हैं । वैसे ही आप शत्रुओं पर आक्रामक रहिए । अर्थात् यदि राष्ट्र में सूर्य के समान तेजस्वी शक्ति हो तो स्वराज्य को कोई हानि नहीं पहुंचा सकता है ।

यद् वृत्रं तव चाशनिं वज्रेण समयोधयः ।
अहिमिन्द्र जिघांसतो दिवि ते बद्बधे शवोऽर्चन्ननु स्वराज्यम्॥१३॥

—ऋ०१।८०।१३।

हे परमैश्वर्य्य युक्त सभेश अपने राज्य का सत्कार करता हुआ तू जैसे आकाश में सूर्य बिजली का प्रहार करके कुटिल मेघ का हनन करता है । वैसे ही शस्त्रास्त्रों से सहित अपनी सेना द्वारा शत्रुओं का नाश कर तथा विजय को प्राप्त कर यशस्वी बन । अर्थात् यदि राजा चाहता है कि राष्ट्र स्वाधीन रहे तो उसे श्रेष्ठ शस्त्रास्त्रों से पूर्ण होकर शत्रु को नाश करने की क्षमता होनी चाहिए ।

अभिष्टने ते अद्रिवो यत् स्था जगच्च रेजते । त्वष्टा चित्तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भियार्चन्ननु स्वराज्यम्॥१४॥

—ऋ०१।८०।१४।

हे बहु मेघ युक्त सूर्य के समान परमैश्वर्य्य युक्त सभाध्यक्ष राजन् जब आपके सर्वथा उत्तम न्याय युक्त व्यवहार में स्थावर और जंगम कम्पायमान होता है । तथा जो शत्रुच्छेदक सेनापति है । उसके क्रोध के लिए भय से भी उद्विग्न होता है तभी आप अपने राज्य का सत्कार करते हुए सुखी रह सकते हैं अर्थात् शक्तिशाली राष्ट्र ही स्वाधीन रह सकता है ।

नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः । तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि सन्दधुरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१५॥

—ऋ०१।८०।१५।

जो उत्तम गुण युक्त राजा अपने राज्य का अनुकूलता से सब सत्कार करता हुआ वर्तता है । जिस राज्य में दिव्यगुण युक्त विद्वान् लोग मन, शरीर और आत्मा के पराक्रमों, बुद्धि, पुरुषार्थ और धन को धारण करते हैं तथा जिस परमेश्वर की कृपा से हम लोग विद्या आदि उत्तम गुणों को प्राप्त होवें, उस अनन्त पराक्रमी परमेश्वर व पूर्ण तेजस्वी राजा को पाकर कौन मनुष्य इस राज्य में विद्या, धनादि को प्राप्त नहीं करेगा । अर्थात् तेजस्वी राजा के सुव्यवस्थित राज्य में सभी नागरिकों को विद्या बुद्धि एवं समृद्धि का प्रयास करना चाहिए ।

यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत । तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१६॥

—ऋ०१।८०।१६।

हे मनुष्यो! तुम लोग, जैसे अपने राज्य की उन्नति से सब का सत्कार करता हुआ उत्तम गुणों को प्राप्त होने वाला अचंचल वृत्ति वाला वेद का विद्वान्, अध्यापक या मननशील मनुष्य, ये जिस शुभ विद्या आदि गुण क्रिया के धारण करने वाली बुद्धि को प्राप्त होकर उस व्यवहार में सुखों का विस्तार

करते हैं वैसे इस को प्राप्त होकर उस व्यवहार में सुखों का विस्तार करो और जिस पूजनीय परमेश्वर की पूर्व पुरुषों ने आराधना की वैसे तुम भी उसी की उपासना कर सब सुख पाओ ।

उपरोक्त सूक्त में स्वराज्य का व्यापक अर्थ राष्ट्र और व्यक्ति दोनों के लिए है । अपने मन, बुद्धि, शरीर इन्द्रियों और आत्मा पर पूर्णरूपेण स्वाधीनता पाना आत्मिक स्वराज्य है । अपनी राष्ट्रभूमि का शासन अपने नियमों के अनुकूल अपने द्वारा हो वह राजनैतिक स्वराज्य है । अतः आत्म संयमित देशभक्तों द्वारा जो स्वराज्य चलाया जाता है वह वैदिक स्वराज्य है । जिसमें समता, ममता, न्याय-प्रियता व सुरक्षा हो, तथा व्यक्तिगत सामाजिक व राष्ट्रीय सर्वांगीण उन्नति एवं समृद्धि के अवसर हों । शक्ति सम्पन्नता एवं शत्रुओं से राष्ट्र की सुरक्षा स्वराज्य के मूल मन्त्र हैं। इनमें राष्ट्र के प्रति बलिदान होने की भावना सर्वोपरि है ।

४. राष्ट्र-निर्माण

स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।
वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयङ्करः ।।१।।

—अथर्व०१।२१।१।

मंगलदायक, प्रजाओं का पालक, घेरने वाले शत्रु का नाश करने वाला, विशेष हिंसकों को वश में करने वाला, बलवान्, सोम का पान करने वाला, अभय देने वाला प्रभु, राजा प्रशासक हमारे आगे चलें । हमारा नेतृत्व करे, अर्थात् हम तेजस्वी, शत्रुनाशक राष्ट्र हितकारी लोगों के नेतृत्व को ही समर्थन दें ।

आ यातु मित्र ऋतुभिः कल्पमानः संवेशयन् पृथिवीमुस्त्रियाभिः । अथास्मभ्यं वरुणो वायुरग्नि-र्बृहद्राष्ट्रं संवेश्यं दधातु ॥२॥

—अथर्व०३।८।१।

अपनी किरणों से पृथिवी को प्रकाशित करने वाला और ऋतुओं के साथ सामर्थ्य बढ़ाने वाला सूर्य, वरुण, वायु और अग्नि ये सब देव हमें ऐसा बड़ा विशाल राष्ट्र देवें कि जो हमारे रहने योग्य हो । अर्थात् हमारा राष्ट्र बड़े से बड़ा हो ।

हुवे सोमं सवितारं नमोभिर्विश्वानादित्याँ अहमुत्तरत्वे ।
अयमग्निर्दीदायद्दीर्घमेव सजातैरिद्धोऽप्रतिब्रुवद्भिः ॥३॥

—अथर्व०३।८।३।

मैं नमन पूर्वक सोम, सविता और सब आदित्यों को बुलाता हूँ कि वे मुझे ऐसी सहायता दें ताकि मैं अधिक श्रेष्ठ योग्यता पाने योग्य होऊं । परस्पर विरोध न करने वाले स्वजातीय लोगों के द्वारा जो यह एक राष्ट्रीयता का अग्नि प्रदीप्त किया गया है वह हमारे लोगों में बहुत देर तक जलता रहे । अर्थात् हम राष्ट्रीयता की भावना से सदैव प्रेरित रहें ।

उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति ।
परा तत्सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते ॥४॥

—अथर्व०५।१९।६।

जो अहंकारी उग्र राजा राष्ट्र में विद्वानों की उपेक्षा करता है, उन्हें सताता है । वहाँ विद्वानों को कष्ट होता है । परिणाम स्वरूप ऐसे राजा का राष्ट्र शीघ्र नष्ट हो जाता है । अर्थात् राज्याधिकारियों को विद्वानों एवं विशेषज्ञों से परामर्श लेकर राष्ट्र की योजनाएँ बनानी चाहिए । इसी में राष्ट्र का कल्याण है ।

तद्वै राष्ट्रमा स्रवति नावं भिन्नामिवोदकम् ।
ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति तद्राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना ।।५।।

—अथर्व०५।१९।८।

जिस राष्ट्र में विद्वानों को कष्ट पहुँचता है । वह राष्ट्र विपत्तियों से भर जाता है, कमजोर हो जाता है । परिणाम स्वरूप ऐसा राष्ट्र नष्ट हो जाता है । जैसे टूटी हुई नाव पानी में डूब जाती है । अर्थात् जिस राष्ट्र में राष्ट्रहितकारी विद्वानों के परामर्शों को नहीं माना जाता है, उनके सुझावों की उपेक्षा होती है वह राष्ट्र गलत नीतियों के कारण नष्ट हो जाता है ।

इदं तद् युज उत्तरमिन्द्रं शुम्भाम्यष्टये ।
अस्य क्षत्रं श्रियं महीं वृष्टिरिव वर्धया तृणम् ।।६।।

—अथर्व०६।५४।१।

मैं श्रेष्ठ लोगों के साथ सम्बन्ध करता हूँ । अपनी उन्नति के लिए परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि हे प्रभो! हमारा राष्ट्र खूब बढ़े और धन भी ऐसे बढ़े जैसे कि वर्षा से घास बढ़ती है । अर्थात् श्रेष्ठ हितकारी लोगों के मार्गदर्शन में राष्ट्रोन्नति करनी चाहिए ।

अस्मै क्षत्रमग्नीषोमावस्मै धारयतं रयिम् ।
इमं राष्ट्रस्याभी वर्गे कृणुतं युज उत्तरम् ।।७।।

—अथर्व०६।५४।२।

हे अग्नीषोमो! हमारे राजा का राज्य स्थिर होवे । राज्य का धन भी बढ़े । राष्ट्र का हित करने वाले लोगों में यह प्रमुख होवे और श्रेष्ठता के साथ उन्नति करे ।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति ।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ।।८।।

—अथर्व०११।५।१७।

ब्रह्मचर्य, ज्ञान, विद्या, शक्ति, संयम आदि के द्वारा राजा या राज्याधिकारी राष्ट्र की रक्षा करते हैं । आचार्य भी ब्रह्मचर्य के साथ रहने वाले ब्रह्मचारी की ही इच्छा करता है । अर्थात् राज्य के प्रशासनिक अधिकारी संयमी, ज्ञानवान् और श्रेष्ठ आचरण वाले हों। वे स्वयं शासन के नियमों को मानें एवं प्रजा से मनवाएं ।

आ ते राष्ट्रमिह रोहितोऽहार्षीद् व्यास्थन्मृधो अभयं ते अभूत् । तस्मै ते द्यावापृथिवी रेवतीभिः कामं दुहाथामिह शक्वरीभिः॥९॥ —अथर्व०१३।१।५।

तेरे राष्ट्र को उसी प्रकाश स्वरूप सूर्यदेव ने बनाया है । उसी ने शत्रुओं को दूर किया है, और तुम्हें निर्भय किया है । वही तेरे हित के लिए धन और शक्तियों द्वारा द्युलोक और पृथिवी को यहाँ इस राष्ट्र में यथेच्छ उपभोग देवे । अर्थात् इस राष्ट्र में रहने वालों के लिए इस भूमि में धन शक्तियां पर्याप्त हों ।

उदेहि वाजिन् यो अप्स्वन्तरिदं राष्ट्रं प्रविश सूनृतावत् । यो रोहितो विश्वमिदं जजान स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु ॥१०॥ —अथर्व०१३।१।१।

हे सामर्थ्यवान् आत्मदेव! तू उदय को प्राप्त हो जो तू आपोमय प्राणों से परे है वह तू इस प्रिय राष्ट्र में प्रविष्ट हो। जिस देव ने यह सब उत्पन्न किया है । वह तुझे इस राष्ट्र के लिए उत्तम भरण पोषण पूर्वक धारण करे । अर्थात् प्रत्येक आत्मा अभ्युदय एवं निश्रेयस प्राप्त करे । प्रत्येक मनुष्य राष्ट्र की उन्नति के साथ अपनी भी उन्नति करे । अपने राष्ट्र पर प्रेम करे जिस प्रकाश स्वरूप परमेश्वर ने इस जगत् की उत्पत्ति की है । वही तुम्हें राष्ट्रीय उन्नति करने के लिए हृष्ट-पुष्ट करे।

उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावद् दिशामुदीची कृणवन्नो अग्रम् । पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह सं भवेम ।।११।।
—अथर्व॰।१२।३।१०।

श्रेष्ठ राज्य सुप्रजा से अधिक श्रेष्ठ होता है । यह उत्तरादि दिशाएँ हम को आगे बढ़ावें । मनुष्य पांच छन्द वाले या पांच प्रकार के होते हैं । उनकी सर्वांगीण उन्नति हो अर्थात् सब की उन्नति ही राष्ट्र की उन्नति है । जो संगठन से ही हो सकती है । और देशवासी अपने निजी लाभ की अपेक्षा राष्ट्र हित को सदैव ज्यादा महत्त्वपूर्ण मानकर राष्ट्र-रक्षा और राष्ट्र-निर्माण में सहयोग दें ।

दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह ।
प्रजां च रोहामृतं च रोह रोहितेन तन्वं सं स्पृशस्व ।।१२।
—अथर्व॰१३।१।३४।

स्वर्ग, पृथ्वी, राष्ट्र, धन, प्रजा, अमरता आदि में प्रगति करनी चाहिए । इन कार्यों को सम्पन्न करने के लिए अपने शरीर का सूर्य के प्रकाश से सम्बन्ध जोड़ दो । जिससे विलक्षण शक्ति प्राप्त होकर उक्त कार्य सिद्ध होवें । अर्थात् शारीरिक व आत्मिक शक्ति प्राप्त करने के लिए ज्ञान और प्रकाश का सहारा लेना चाहिये तभी राष्ट्र की उन्नति सम्भव है ।

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ।।१३।।
—अथर्व॰१९।४१।१।

कल्याण की इच्छा करने वाले आत्मज्ञानी ऋषियों ने आरम्भ में तप और दीक्षा की उससे यह राष्ट्र बना और बल एवं सामर्थ्य भी उत्पन्न हुआ । इसलिए इसके सामने ज्ञानी पुरुष विनम्र हों । अर्थात् देशवासी कृतज्ञभाव से विभिन्न विद्याओं

और तकनीकों में दीक्षित होकर राष्ट्र के विकास कार्यों में प्रयत्नशील रहें । राष्ट्र रक्षा रूपी तप की साधना करते रहें ।

वाजस्येमं प्रसवः सुषुवेऽग्रे सोमः राजानमोषधीष्वप्सु । ता अस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु वयः राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा॥१४॥ —यजु॰९।२३।

हे मनुष्य लोगो ! जैसे मैं प्रथम ऐश्वर्य युक्त होकर वैद्यक शास्त्र बोध सम्बन्धी इस चन्द्रमा के समान सब दुःखों के नाश करने हारे विद्या, न्याय और विनयों से प्रकाशमान राजा को ऐश्वर्य युक्त करता हूँ । जैसे उसकी रक्षा में पृथिवी पर उत्पन्न होने वाली यव आदि औषधियां और जलों के बीच में वर्तमान औषधियाँ हैं, वे हमारे लिए प्रशस्त मधुर गुण वाली हों । जैसे सत्य क्रिया के साथ सब के हितकारी लोग राज्य में निरन्तर आलस्य छोड़ के जागते रहें। वैसे तुम भी वर्त्ता करो । अर्थात् हम अग्रसर होकर अपने राष्ट्र में जागृत रहें और देशवासियों को भी जागृत करते रहें ।

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम् ।
मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥१५॥
—यजु॰३२।१६।

मेरा यह ज्ञान तेज और क्षात्र तेज दोनों मिलकर उत्तम शोभा को प्राप्त होवें तथा उत्तम सद्गुण मुझ में तेजस्विता धारण करें । उस तेज की प्राप्ति के लिए तुम अपनी आत्मा के समान सब से व्यवहार करो, अर्थात् राष्ट्र की रक्षा व समृद्धि के लिए शास्त्र व शस्त्र बल दोनों की वृद्धि करनी चाहिए।

अयं पन्था अनुवित्तः पुराणो यतो देवा उदजायन्त विश्वे । अतश्चिदा जनिषीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवे कः ॥१६॥ —ऋ०४।१८।१।

यह ऐश्वर्य दिलाने वाला सनातन मार्ग है, जिस मार्ग से सब देव उन्नत हुए हैं । उसी से मनुष्य उन्नत होकर बड़ा हुआ है । हे मनुष्य ! अपनी कार्य प्रवृत्ति से अपनी मातृभूमि की गिरावट न कर । अर्थात् राष्ट्रभूमि की उन्नति से अपनी भी उन्नति होती है इसलिए हमारा कोई कार्य मातृभूमि का अहितकारी न हो । हमारे किसी कार्य के कारण मातृभूमि की अवनति न होवे ।

ता उभौ चतुरः पदः सं प्रसारयाव स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥१७। –यजु॰२३।२०।

हम राजा और प्रजा दोनों मिलकर चारों पद–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन पुरुषार्थों को अच्छी प्रकार प्राप्त करें । सुखमय लोक में एक दूसरे की भली प्रकार से रक्षा करें । बलवान् वीर सामर्थ्य युक्त होकर बल को धारण करें । अर्थात् राज्य प्रशासन और प्रजा मिलकर राष्ट्र की उन्नति करें एवं प्रत्येक व्यक्ति अपने इष्ट ध्येय की पूर्त्ति इस लोक और परलोक में प्राप्त करे ।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः । ब्रह्म राजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय । प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु ॥१८॥ –यजु॰२६।२।

जिस प्रकार इस कल्याणकारी वाणी (वेद वाणी) को हम ने ब्राह्मण व क्षत्रियों के लिए और शूद्र, वैश्य के लिए अपने पराये एवं सम्पूर्ण मानव मात्र के लिए उपदेश किया है। वैसे ही हे मनुष्यो! तुम लोग भी करो । इससे संसार में देवताओं एवं विद्वानों द्वारा मुझ में प्रीति होती है । वैसा तुम भी करो। इससे मेरा यह इष्ट मनोरथ सफल हो और मुझे यश मिले अर्थात् चारों

वेद पढ़ने का सब को समान अधिकार है । और वे उससे सब प्रकार लाभ उठावें एवं वैदिक ज्ञान विज्ञान द्वारा राष्ट्रोन्नति करें।

५. राष्ट्र-व्यवस्था

सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्ट्रा रूपैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रेणास्मे । बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसाऽग्निना तेजसा सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूतः प्रसर्पामि॥१॥ —यजु॰१०।३०।

समस्त ऐश्वर्यों के उत्पादक सविता के दिव्य गुण से, उत्तम विज्ञान युक्त वाणी से, रूपों के अधिष्ठाता देवता प्रजापति के रूप से, पशुओं से युक्त पूषा से, वेद ज्ञान से युक्त ब्रह्मणस्पति से अपने आप स्वयम् इन्द्र राजा रूप से पराक्रम से युक्त वरुण से, तेज से युक्त अग्नि से, राजा स्वरूप सोम से, व्यापकता से युक्त विष्णु से, इन दस दिव्य गुणों से प्रेरित और सामर्थ्यवान् होकर मैं राज्य का संचालन करूंगा, राष्ट्र को आगे ले जाऊंगा अर्थात् राष्ट्र के सर्वोच्च प्रशासक में उपरोक्त दस गुण होने चाहिए ।

इमं देवा असपत्नꣳसुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमो ऽस्माकम् ब्राह्मणानाꣳ राजा ॥२॥ —यजु॰९।४०। व १०।१८

बड़े भारी क्षात्र बल के लिए, महान् सर्वश्रेष्ठ राजपद के लिए और महती प्रजा के ऊपर राजा हो जाने के लिए और परम ऐश्वर्यवान् राजा के ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए, देवगण शत्रुओं से रहित इस योग्य पुरुष को अभिषिक्त करें । इस अमुक पिता

के पुत्र, अमुक माता के पुत्र को इस प्रजा के लिए राज्याभिषिक्त किया जाता है। हे अमुक-अमुक राजाओ ! तुम लोगों का यह राजा सोम के समान सुखदाता है । वह हमारे विद्वानों का भी राजा है अर्थात् राज्य प्रशासक तेजस्वी, ऐश्वर्यवान्, अजातशत्रु और सुखदाता हो ।

सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभिषिञ्चाम्यग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेण । क्षत्राणां क्षत्रपतिरेध्यति दिद्यून् पाहि ॥३॥
—यजु०१०।१७।

हे राजा! मैं तुझे चन्द्रमा की कान्ति से, अग्नि की दीप्ति से, सूर्य के वर्चस् से, इन्द्र के ऐश्वर्य से अभिषिक्त करता हूँ। तू क्षात्र बलों का अधिपति हो तथा शत्रु के शस्त्रों से हमारी रक्षा कर । अर्थात् राज्य प्रशासक में उपरोक्त गुण होने चाहिए।

स इत् क्षेति सुधित ओकसि स्वे तस्मा इळा पिन्वते विश्वदानीम् । तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते यस्मिन् ब्रह्मा राजनि पूर्व एति ॥४॥
—ऋ०४।५०।८।

जिस राजा के राज्य में ब्रह्म ज्ञानी पुरोहित सब से पूज्य होकर आगे रहते हैं वही राजा अच्छी तरह से तृप्त रहकर अपने घर या राज्य में सुख से रहता है । उसके राज्य की भूमि प्रतिदिन पुष्ट होती रहती है । उसके सामने प्रजाएं स्वयम् आदर पूर्वक झुक जाती हैं । अर्थात् जिस राज्य में विद्वानों के परामर्श से निष्पक्ष व्यवस्था चलती है । वह राष्ट्र सुरक्षित एवं प्रजा सन्तुष्ट रहती है ।

वाजस्येमां प्रसवः शिश्रिये दिवमिमा च विश्वा भुवनानि सम्राट् । अदित्सन्तं दापयति प्रजानन्त्स नो रयिंसर्ववीरं नियच्छतु स्वाहा ॥५॥
—यजु०९।२४।

हे मनुष्य लोगो ! जैसे राज्य के मध्य में उत्पन्न हुए

अच्छे प्रकार राजधर्म में प्रवर्तमान मैं इस भूमि को प्रकाशित और इन सब और घरों को अच्छी प्रकार आश्रय करता हूँ। वैसे तुम भी इस को अच्छे प्रकार शोभित करो । और जो धर्मयुक्त सत्यवाणी से जानता हुआ, राज्य कर न देने की इच्छा करने वाले से कर दिलाता है। वह हमारे सब वीरों को प्राप्त कराने हारे धन को ग्रहण करे । अर्थात् जो मूल राज्य के बीच सनातन राजनीति को जानकर राज्य की रक्षा करने में समर्थ होवे । उसी को राजा बनाओ जो करदाताओं से कर वसूल कर सके उसे मन्त्री (वित्त) जो शत्रुओं का नाश करने में समर्थ हो उसे सेनापति और जो विद्वान् धार्मिक पक्षपात रहित हो उसे न्यायाधीश बनाओ ।

वाजस्य नु प्रसव आबभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः। सनेमि राजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्धयमानो अस्मे स्वाहा ॥६॥ —यजु०९।२५।

हे मनुष्यो! जो वेदादि शास्त्रों का ज्ञाता सत्यनीति से चलने वाला, सम्पूर्ण विद्याओं का जानने वाला, श्रेष्ठ पुरुष हो और जो इन सब माण्डलिक राजनिवास स्थानों और सनातन नियमों के अनुकूल प्रजा का पालन पोषण करने योग्य तथा उनकी वृद्धि करने वाला हो उसी को राजा बनाओ ।

वृष्णऽऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा । वृष्णऽऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि । वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृषसेनोऽसि राष्ट्रममुष्मै देहि॥७॥ —यजु०१०।२।

हे राजन् ! जिस कारण आप सुख के वर्षा कारक ज्ञान के प्राप्त कराने वाले व राज्य के देनेहारे हैं इससे मुझे सत्यनीति से राष्ट्र को दीजिये । आप सुख की वर्षा करने वाले, राज्य

के जानने और राष्ट्र प्रदान करने हारे हैं । अतः उसको राष्ट्र प्रदान करें । तू राष्ट्र का देने वाला और बलवान् सेना से युक्त है मेरे लिए सुन्दर वाणी के साथ राज्य दे । तू राज्य को देने वाले बलवान सेना से युक्त है । इसलिए तू राज्य प्रदान कर अर्थात् राज्य का भार उन योग्य प्रशासकों को दो जो राज्य की रक्षा व उन्नति कर सकें और जिनमें मधुरता, तेजस्विता, प्रशासनिक ज्ञान, प्रेरणादायक विचार, शान्तिदायक कोमलता आदि गुण हों ।

अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहार्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहाऽपां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देह्यपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहाऽपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥८॥

—यजु०१०।३।

हे श्रेष्ठ लोगो ! तुम अर्थ प्राप्त करने में प्रयत्नकारी हो अतएव तुम भी राष्ट्र को देने वाले हो, तुम लोग उत्तम रीति से मुझे राष्ट्र प्रदान करो । हे वीर पुरुषो ! तुम लोग ऐश्वर्य बल के कारण समर्थ हो अतः राष्ट्र दिलाने वाले हो । तुम लोग उस योग्य पुरुष को राष्ट्र प्रदान करो । तुम सब महान् बल से युक्त राष्ट्र देने में समर्थ हो । अतः उस योग्य पुरुष को राज्य प्रदान करो । हे वीरो ! तुम सब प्रकार से उत्तम सेनाओं से युक्त हो अतः राष्ट्र प्राप्त करने में समर्थ हो, मुझे राष्ट्र प्रदान करो तथा तुम सब लोग सब प्रकार से सेना से युक्त राज्य प्रदान करने में समर्थ हो । अतः उस योग्य पुरुष को राज्य प्रदान करो । तू समस्त

सेनाओं के बीच गर्भ के समान सुरक्षित है। अतः मुझे राष्ट्र प्राप्त करा । तू समस्त सेनाओं का रक्षक है, सब का नेता राष्ट्र प्राप्त कराने में समर्थ है अतः अमुक योग्य पुरुष को राष्ट्र प्रदान कर तथा हे राजन् ! तू ही प्राणों का रक्षक है । मुझे अच्छी प्रकार राष्ट्र प्रदान कर । तू प्रजाओं के स्तुति योग्य है सो आप उस प्रशंसित पुरुष को राज्य दीजिये । अर्थात् राज्य के अधिकारी पुरुष और उनकी स्त्रियां हों उनको चाहिए कि अपनी उन्नति के साथ दूसरों की उन्नति सह के सब मनुष्यों को राज्य के योग्य करें और आप भी सुख भोगें । ऐसा न हो कि दूसरों से ईर्ष्या वश हानि कर के अपने राज्य की भी हानि करें । सुखदाता जन को राज्य प्रदान करो । जिस लिए तुम लोग गौ आदि पशुओं के स्थानों को बसाते हुए सत्य क्रियाओं के सहित राज्य दाता हो अतः मुझे राज्य प्रदान करो । स्थानादि से पशुओं के रक्षक होते हुए राज्य देने वाले हो अतः तुम सब उन गौ आदि पशुओं के रक्षक पुरुष के लिए राज्य प्रदान करो । जिस कारण तुम लोग कामना करते हुए सत्यनीति से राज्यदाता हो अतः मुझे राज्य प्रदान करो । तथा इच्छा युक्त होते हुए तुम सब राज्य देने वाले हो । इसलिए इस इच्छा युक्त पुरुष के निमित्त राज्य को प्रदान करो। तुम लोग अत्यन्त बलवान् होते हुए सत्पुरुषार्थ से राज्यदाता हो। अतः मुझ बलवान् को राज्य प्रदान करो । और अति पराक्रमी राज्यदाता हो । इस कारण उस अति पराक्रमी जन के लिए राज्य को प्रदान करो । हे रानियो! जिस लिए तुम सब सामर्थ्य वाली प्रजा होती हुई सत्यपुरुषार्थ से राज्य करने वाली हो अतः सामर्थ्यवान् मुझे राज्य प्रदान करो और तुम सामर्थ्य युक्त राज्य देने वाली हो इस कारण उस सामर्थ्य युक्त पुरुष के लिए राज्य को दीजिये तथा तुम लोग श्रेष्ठ मनुष्यों को पोषण करने वाली होती हुई सत्यकर्मों के साथ राज्य देने वाली हो । इसलिए श्रेष्ठ

गुणयुक्त मुझे राज्य प्रदान करो । तुम सब श्रेष्ठ जनों को धारण करने वाली राज्यप्रदात्री हो । इसलिए उस सत्यप्रिय पुरुष के लिए राज्य प्रदान करो । हे सभाध्यक्षादि राजपुरुषो ! तुम लोग सब संसार के पोषण करने वाले होते हुए सत्य वाणी के साथ राज्य प्रदाता हो अतः सब के पोषक मुझे राज्य प्रदान करो । तुम विश्व को धारण करने वाले राज्यदाता हो अतः उन धारण करने वाले मनुष्यों के लिए राष्ट्र को प्रदान करो तथा तुम लोग सब विद्याओं और धर्मों को जानने वाले स्वयं प्रकाश राज्य प्रदाता हो । इसलिए उस धर्मज्ञ पुरुष के लिए राज्य प्रदान करें । हे श्रेष्ठ गुणों वाली स्त्रियो! तुम सब को चाहिए कि क्षत्रियों के लिए बड़े पूजा के योग्य राज्य चाहती हुई बल पराक्रम के सहित वर्तमान क्षात्र धर्म के पालन करने वालों के लिए बड़े राज्य को धारण करती हुई ।

सूर्य्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्य्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त सूर्य्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शविष्ठा स्थ राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शक्करी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शक्करी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त । मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्तां महि क्षत्रं

क्षत्रियाय वन्वानाऽअनाधृष्टाः सीदत सहौजसो महि क्षत्रं क्षत्रियाय दधतीः ॥९॥ —यजु॰१०।४।

हे राजपुरुषो! तुम लोग सूर्य के सदृश अपने प्रकाश से सब तेज को प्रकाशित करने वाले हो अतः तुम राष्ट्र देने वाले हो । इसलिए मुझे राज्य प्रदान करो । जिस कारण तुम सूर्य के समान तेजस्वी हो सो तुम राज्य के देने वाले हो इसलिए उस पुरुष को राज्य प्रदान करो । सूर्य प्रकाश के समान तुम हो । अतः तुम लोग राज्यदाता हो इस कारण मुझ को राज्य प्रदान करो । जिस कारण तुम सूर्य के समान प्रकाशमान हो। अतः तुम लोग देने हारे हो इसलिए उस प्रकाशमान पुरुष के लिए राज्य प्रदान करो । और मनुष्यों को आनन्द देने वाले होते हुए तुम लोग सत्य वचनों के साथ राज्य देने वाले हो, इसलिए मुझे राज्य प्रदान करो । तुम लोग प्राणियों को सुख देने वाले हो के राज्यदाता हो, अतः उस शत्रुओं के वश में न आने वाली, मधुर रसों वाली औषधियों तथा मधुरादि गुणों से युक्त वसन्तादि ऋतुओं के सुखों को सिद्ध किया करो। हे श्रेष्ठ सज्जन पुरुषो! तुम लोग इस प्रकार की स्त्रियों को पाओ। अर्थात् हे स्त्री पुरुषो! जो सूर्य के समान न्याय और विद्या का प्रकाश कर, सब को आनन्द देने गौ आदि पशुओं की रक्षा करने शुभ गुणों से शोभायमान बलवान् अपने तुल्य स्त्रियों से विवाह और संसार का पोषण करने वाले स्वाधीन हैं । वे ही औरों के लिए राज्य-व्यवस्था देने और स्वयं राज्य प्रशासन करने में समर्थ होते हैं अन्य नहीं । अतः राज्य प्रशासन एवं नेतृत्व का उत्तरदायित्व योग्य व्यक्तियों को ही देना चाहिए ।

दितेः पुत्राणामदितेरकार्षमव देवानां बृहतामनर्मणाम्। तेषां हि धाम गभिषक्समुद्रियं नैनान्नमसा परो अस्ति कश्चन॥१०॥ —अथर्व॰७।७।१

राष्ट्र को पराधीनता की ओर ले जाने वाले राक्षस अथवा असुर समुद्र के मध्य में बहुत गहरे स्थान में रहते हैं । वहाँ से उन को मैं हटाता हूँ और मातृभूमि की स्वाधीनता सम्पादन करने वाले श्रेष्ठ दिव्य गुणों से युक्त अहिंसाशील श्रेष्ठजनों को उसे प्राप्त कराता हूँ । क्योंकि इन सज्जनों से अधिक योग्य कोई दूसरा नहीं है । अर्थात् राष्ट्र को पराधीनता की ओर ले जाने वाले शत्रु लोगों को समाप्त करना चाहिए एवं राष्ट्र में दैवी वृत्ति वाले सज्जनों के श्रेष्ठ कार्यों को प्रोत्साहन देना चहिए। तथा ऐसे पुरुषों को राष्ट्र का नेतृत्व सुपुर्द करना चाहिए।

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने। येना संगच्छा उप मा स शिक्षाच्चारु वदानि पितरःसङ्गतेषु ॥११॥ —अथर्व०७।१२।१

राष्ट्र में राष्ट्रसभा और राष्ट्रसभा में ग्राम-समिति होनी चाहिए और राजा को उनका पुत्रीवत् पालन करना चहिए । ये दोनों सभाएँ एकमत से राष्ट्र का कार्य करें और प्रजारंजन करने वाले राजा का पालन करें । राजा जिस सभासद् से राज्य-शासन विषयक सम्मति पूछे वह सभासद् योग्य सम्मति राजा को देवे । राजा और अन्य सभासद् सभाओं में शिष्टता से वादविवाद करें अर्थात् प्रजातान्त्रिक विधि से राज्य-व्यवस्था चलानी चाहिए मगर बहुमत और अल्पमत की प्रक्रियाओं में राष्ट्रहित की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए ।

६. शत्रु-नाशन एवं राष्ट्र-रक्षा

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति ॥१॥

—अथर्व०१।२१।२।

हे राजन्! हमारे शत्रुओं को मार डाल । सेना लेकर हमला करने वाले शत्रु को दबा दे । जो हमें घात कर दास बनाना चाहता है । उसका नाश कर दे, उसे दूर भगा दे । अन्धकार में पहुंचा दे । अर्थात् राष्ट्र प्रशासनिक अधिकारियों को देश के शत्रुओं को ढूंढ निकालकर नाश कर देना चाहिए।

वि रक्षो वि मृधो जहि वृत्रस्य हनूरुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ।।२।।

—अथर्व०१।२१।३।

हे शत्रुनाशक राजन्! तू हिंसकों और राक्षसों को मार डाल। तू घेर कर हमला करने वाले शत्रु के दोनों जबड़ों को तोड़ दे । हमारा नाश करने वाले शत्रु के उत्साह को नष्ट कर दे । अर्थात् राष्ट्रद्रोहियों को मार डालना चाहिए ।

अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम् ।
वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ।।३।।

—अथर्व०१।२१।४।

हे राजन्! तू शत्रु के मन को बदल दे ताकि वह हमला करने का इरादा ही छोड़ दे । हम को नाश करने वाले को दूर कर दे। शत्रु के घात पात आदि दुष्कर्मों को दूर कर और सब प्रजाओं को निर्भय कर सुख दे । अर्थात् राष्ट्र का मनोबल और सैन्य शक्ति इतनी होनी चाहिए कि शत्रु हमला करने का साहस ही न कर सके और यदि करे तो शत्रु को सदैव के लिए नष्ट कर देवें ।

यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून ।
सोमो राजा वरुणो राजा महादेव उत मृत्युरिन्द्रः।।४।।

—अथर्व०५।२१।११।

हे राष्ट्रभूमि को माता मानने वाले एवं मरने के लिए सिद्ध हुए वीरो, शूर सेनापति के साथ रहकर शत्रुओं को मार डालो। सोम, वरुण, महादेव, मृत्यु और इन्द्रादि देव सब शूरवीरों को सहायता करने वाले हैं। अर्थात् तेजस्वी शूरवीरों की देवता भी सहायता करते हैं।

एता देवसेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः।
अमित्रान्नो जयन्तु स्वाहा ॥५॥

—अथर्व०५।२१।१२।

ये दिव्य सेनाएँ सूर्य का ध्वज लेकर चलने वाली उत्तम चित्त से यानी दृढ़ संकल्प से युक्त होकर हमारे शत्रुओं का पराभव करें और शत्रु हमारे समुख आत्म-समर्पण करे। अर्थात् राष्ट्र की सेनाओं को दृढ़ संकल्प के साथ शत्रु को निश्चित पराजित करना चाहिए।

सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति।
सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥६॥

—अथर्व०६।५४।३।

जो शत्रु अपने साथी भाइयों सहित या अकेले हमारा विनाश करना चाहता हो, उसका नाश करो। अर्थात् राष्ट्र शत्रु रहित होकर सब प्रकार उन्नति करे।

परि त्वा धात् सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा। सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहीदं राष्ट्रमकरः सूनृतावत् ॥७॥

—अथर्व०१३।१।२०

सविता देव चारों ओर रहें। अग्नि अपने तेज से और मित्र तथा वरुण तेरी चारों ओर से रक्षा करें। तू सब शत्रुओं के ऊपर चढ़ाई करते हुए आगे बढ़ तथा इस राष्ट्र को आनन्द

पूर्ण कर । अर्थात् हमारी राष्ट्रोन्नति में सब देव सहायक हों। हम सब शत्रुओं को परास्त करें एवं राष्ट्र सब भांति उन्नति करे ।

धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान्धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः। देवानामसि वह्नितमꣳ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् ॥८॥

—यजु॰१।८।

हे मनुष्य ! तू विनाश कर सकता है तो घातक और हत्यारे को नष्ट कर जो हमारा विनाश करता है उसका विनाश कर । हम सभी जिसे नष्ट करना चाहते हैं उसे विनष्ट कर। तू देवों का महान् वहनकर्त्ता है तुझ में असीम शक्तियाँ भी हैं । तू देवों को बुलाने वाला भी है । तू इस यज्ञ में हविकारक बर्तन के समान है जो सीधा समतल रहता है । तू सरल रह, कुटिल मत बन । यदि तू कुटिल बन गया तो कोई अच्छा काम न कर सकेगा । इसलिए तू सेवनीय बन अर्थात् हम अपनी सृजनात्मक शक्तियों का विकास कर देश सेवा करें और अपने शत्रुओं को नष्ट करें ।

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे ।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥९॥

—ऋ॰१।३९।२।

हे वीरो ! तुम्हारे हथियार शत्रु दल को हटाने के लिए अपेक्षाकृत अधिक सुदृढ़ एवं कार्यक्षम हों और उनकी राह में रुकावटें खड़ी करने के लिए प्रतिबन्ध करने के लिए अत्यधिक बलयुक्त एवं शक्ति सम्पन्न भी हों । तुम्हारी शक्ति अत्यन्त सराहनीय हो ताकि कपटी लोगों का बल न बढ़े अर्थात् राष्ट्रद्रोहियों व शत्रुओं की शक्ति को कुचलने के लिए हमारे सैनिकों के पास पर्याप्त शस्त्रास्त्र होने चाहिए।

नहि वः शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्यां रिशादसः ।
युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिदाधृषे ॥१०॥
—ऋ०१।३९।४।

हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले वीरो ! द्युलोक और भूमण्डल पर कहीं भी तुम्हारा शत्रु न रहे । हे शत्रुओं को रुलाने वाले वीरो! तुम्हारे साथ रहते हुए शत्रुओं को नष्ट करने की मेरी शक्ति और अधिक बढ़ जाए । अर्थात् हम शत्रु की शक्ति के अनुसार अपनी विध्वंसशक्ति लगातार बढ़ाते रहें ताकि कोई शत्रु हम पर हमला करने का साहस न कर सके ।

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरे भरे। अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ॥११॥ —ऋ०१।१०२।४।

हे प्रशंसित सेनापति! हम घेरने वाले शत्रु को तेरी सहायता से जीतें । अर्थात् शत्रु हमें परास्त न कर सके । हम अपने धन की रक्षा करें । और इस प्रकार हर संग्राम में अपने शत्रुओं का नाश करें । और अपने उपार्जित धन की रक्षा करते हुए सुख पूर्वक रहें । अर्थात् सेनापति और प्रशासक शत्रु का नाश करें ताकि प्रजा सुख शान्ति पूर्वक रह सके ।

७. पारस्परिक प्रेम

भा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥१॥
—अथर्व०३।३०।३।

भाई-भाई से द्वेष न करे और बहिन-बहिन से द्वेष न करे । एक विचार वाले और एक कर्म वाले होकर हम आपस

में बातचीत करें । अर्थात् राष्ट्र-निर्माण के लिए देशवासियों का मन एक समान होना चहिए ।

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः ।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे सं ज्ञानं पुरुषेभ्यः ।।२।।

—अथर्व॰३।३०।४।

जिस एक समान विचार होने से, कार्य करने में विरोध नहीं होता है और न कभी परस्पर द्वेष बढ़ता है । वह एकता बढ़ाने वाला परम उत्तम ज्ञान तुम सब अपने घरों में बढ़ाओ। अर्थात् हमारे संस्कार ऐसे होने चाहिए कि सभी सामान्य विषयों एवं समस्याओं पर हमारे विचार समान हों ।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः । अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि ।।३।।

—अथर्व॰३।३०।५।

वृद्धों का सम्मान करो, चित्त में शुभ संकल्प धारण करो । उत्तम सिद्धि तक प्रयत्न करो, आगे बढ़कर अपने सिर पर कार्य भार लो । और आपस में विद्वेष न बढ़ाओ । परस्पर प्रेमपूर्वक मिलकर बातचीत करो । मिल जुलकर पुरुषार्थ करने वाले बनो । इसलिए तुम्हें उत्तम मन से युक्त बनाया है ।

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचः राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचारुचम् ।।४।।

—यजु॰१।८।४८।

हे परमेश्वर ! विद्वन्! आप हम लोगों के ब्रह्मवेत्ता विद्वानों में प्रीति से प्रीति को स्थापित कीजिये । हम लोगों के क्षत्रियों शूरवीरों में प्रीति से प्रीति कराइये । प्रजाजनों में से हमारे वैश्यों व्यापारियों तथा शूद्रों कारीगरों शिल्पियों

आदि में पारस्परिक प्रीति और मुझ में भी प्रीति स्थापित कीजिए अर्थात् समाज के सभी प्रकार के मनुष्य आपस में प्रीतिपूर्वक व्यवहार करें और प्रत्येक अपना कार्य श्रेष्ठता से सम्पन्न करता हुआ दूसरे के कार्यों के प्रति सम्मान भाव रखे और प्रीति करे ।

दृते दृं ह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥५॥ —यजु०३६।१८।

हे सामर्थ्यवान् परमेश्वर ! मुझे बलवान् करो । सब प्राणीमात्र मुझे मित्र की दृष्टि से देखें । मैं भी सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखता हूँ । हम सब आपस में सब प्राणीमात्र से मित्रवत् व्यवहार करें । किसी से द्वेष न करें । अर्थात् राष्ट्र में सभी नागरिक समान हैं । कोई किसी से भेद भाव न करे ।

८. राष्ट्रीय एकता एवं संगठन

अदारसृद् भवतु देव सोमास्मिन् यज्ञे मरुतो मृडता नः। मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ॥१॥ —अथर्व०१।२०।१।

हे सोमदेव ! हम सब से आपस की फूट हटाने वाला कार्य होता रहे । हे मरुतो! इस यज्ञ में हमें सुखी करो । पराभव या पराजय हमारे पास न आवे । दुष्कीर्ति या कलंक हमारे पास न आवे और जो द्वेष भाव बढ़ाने वाले कुटिल कृत्य हैं वे भी हमारे पास न आवें। अर्थात् हम में आपस में कभी फूट या वैमनस्य न हो । हम सदा संगठित रहें तभी सामाजिक एवं

राजनैतिक पराजय से बच सकते हैं, क्योंकि एकता ही राष्ट्र की शक्ति है ।

इहेदसाथ न परो गमाथेर्यो गोपाः पुष्टपतिर्व आजत् ।
अस्मै कामायोप कामिनीर्विश्वे वो देवा उपसंयन्तु ॥२॥

—अथर्व०३।८।४।

तुम सब यहाँ एक विचार से रहो, परस्पर विरोध करके एक दूसरे से दूर न हो जाओ । अन्न अपने पास रखने वाला कृषक और गौओं का पालन करने वाला, तुम्हारी पुष्टि करने वाला वैश्य तुम को इकट्ठा करके यहाँ लाए । एक इच्छा की पूर्त्ति के लिए प्रयत्न करने वाली सब प्रजाओं को सब देव एकता के विचार से संयुक्त करें । अर्थात् राष्ट्र-निर्माण एवं राष्ट्ररक्षा के लिए हम सभी परस्पर एक मत हों, सुसंगठित हों ।

सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि ।
अमी ये विव्रता स्थन तान्वः सं नमयामसि ॥३॥

—अथर्व०३।८।५।

हे मनुष्यो! तुम अपने मन एक करो । तुम्हारे कर्म एकता के लिए हों । तुम्हारे संकल्प एक हों जिससे तुम संघशक्ति से युक्त हो जाओ । जो ये आपस में विरोध करने वाले हैं उन सब को हम एक विचार से एकत्र झुका देते हैं। अर्थात् हम मन, कर्म, वचन एवं संकल्प से एक हों और विरोधी विचार वालों को भी प्रभावित कर अपने विचार का बनाकर, संगठित हों । इसी में राष्ट्र शक्ति निहित है ।

अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनुचित्तेभिरेत ।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनु वर्त्मान एत ॥४॥

—अथर्व०३।८।६।

हे मनुष्यो ! सब से पहले मैं अपने मन से तुम्हारे मनों को आकर्षित करता हूँ। मेरे चित्त के अनुकूल तुम अपने चित्तों को बनाकर यहाँ मेरे पास आओ । मैं अपने वश में तुम्हारे हृदयों को करता हूँ । मैं जिस मार्ग से जाता हूँ उस मार्ग पर चलते हुए तुम मेरे पीछे पीछे चले आओ । अर्थात् सामाजिक संगठन के लिए कार्यकर्त्ता का व्यवहार चित्त को आकर्षणकारी हो । समतावादी और हृदय को जीतने वाला हो । नेतृत्व करने वाले का व्यवहार दूसरों के लिए एक आदर्श हो, विद्वत्ता एवं तर्क पूर्ण हो ।

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ।।५।।

—अथर्व०३।३०।१।

हे मनुष्यो ! तुम लोग प्रेमपूर्ण हृदय के भाव, मन के शुभ विचार और आपस की निर्वैरता अपने मन में स्थिर कीजिए। तुम्हारे में से हर एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के साथ ऐसा प्रेमपूर्ण वर्ताव करे कि जिस प्रकार नव-जात बछड़े से उसकी गांमाता प्यार करती है । अर्थात् हम समाज के किसी भाई बहिन के साथ द्वेष, घृणा, ऊंच-नीच व भेद-भाव का व्यवहार न करें।

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि । सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ।।६।।

—अथर्व०३।३०।६

हे मनुष्यो! तुम्हारे जल पीने का स्थान एक हो और तुम्हारे अन्न का भाग भी साथ-साथ हो । मैं तुम सब को एक ही जुए में साथ-साथ जोड़ता हूँ । तुम सब मिलकर ईश्वर की पूजा करो। जैसे पहिए के आरे केन्द्र स्थान में जुड़े होते हैं । वैसे ही तुम अपने समाज में एक दूसरे के साथ मिलकर

रहो । अर्थात् समाज के सभी लोग एक साथ मिलकर खाएँ, पीयें उपासना करें, और मिलकर मैत्री भाव से रहें । तथा इस प्रकार अपनी व राष्ट्र की उन्नति करें ।

सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवनेन सर्वान् ।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥७॥

—अथर्व०३।३०।७।

परस्पर सेवा भाव से तुम सब के साथ मिलकर पुरुषार्थ करो, उत्तम ज्ञान प्राप्त करो । समान नेता की आज्ञा में कार्य करने वालें बनो । दृढ़ संकल्प से कार्य में दत्तचित्त हो तथा जिस प्रकार देव अमृत की रक्षा करते हैं इसी प्रकार तुम भी सायं-प्रातः अपने मन के शुभ संकल्पों की रक्षा करो । अर्थात् हम आत्म-विकास एवं राष्ट्र-निर्माण के लिए एक ध्येय निष्ठ होकर, मिल-जुलकर दृढ़ संकल्प के साथ कार्य करें ।

सं जानीध्वं सं पृच्यध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥८॥

—अथर्व०६।६४।१।

हे मनुष्यो ! तुम समान ज्ञान प्राप्त करो, समानता से एक दूसरे के साथ सम्बन्ध जोड़ो, समता भाव से मिल जाओ। तुम्हारे मन समान संस्कारों से युक्त हों कभी एक दूसरे के साथ हीनता का भाव न रखो । जैसे अपने प्राचीनतम श्रेष्ठ लोक के समय ज्ञानी लोग अपना कर्त्तव्य पालन करते रहे । वैसे तुम भी अपना कर्त्तव्य पूरा करो, अर्थात् सब संगठित होकर राष्ट्रोन्नति करो ।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं व्रतं सह चित्तमेषाम्।
समानेन वो हविषा जुहोमि समानं चेतो अभिसं विशध्वम्॥९॥

—अथर्व०६।६४।२।

हे मनुष्यो ! तुम्हारे विचार समान हों, तुम्हारी सभा सब के लिए समान हो । तुम सब का व्रत या संकल्प एक समान हो। तुम सब का चित्त एक समान भाव से भरा हो । एक विचार होकर किसी कार्य में एक मन से लगो । इसीलिए तुम सब को समान हवि या मौलिक शक्तियाँ मिली हैं । अर्थात् दृढ़ संकल्प के साथ सब राष्ट्र रक्षा के कार्य में लग जाएँ ।

समानी व आकूतीः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥१०॥
—ऋ०१०।१९१।४।

हे मनुष्यो! तुम सब का संकल्प एक जैसा हो। तुम्हारा हृदय समान हो । तुम्हारा मन समान हो, परस्पर मतभेद न हो तुम्हारे मन के विचार भी समता युक्त हों । यदि तुमने इस प्रकार अपनी एकता और संगठना की तो तुम यहाँ उत्तम रीति से आनन्द पूर्वक रह सकते हो । और कोई शत्रु तुम्हारे राष्ट्र को हानि नहीं पहुंचा सकता है अर्थात् राष्ट्र की शक्ति और अस्तित्व तुम्हारे संगठन और एकता में ही है । सामाजिक और राष्ट्रीय विषयों में हमारा मन, हृदय व संकल्प एक जैसे हों। इसी में हमारी भलाई है ।

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते ॥११॥
—ऋ०१०।१९१।२।

हे मनुष्यो ! तुम सब परस्पर एक विचार से मिलकर रहो। परस्पर प्रेम से वार्तालाप करो । तुम लोगों का मन समान होकर ज्ञान प्राप्त करे । जिस प्रकार पहले के लोग एक मत होकर ज्ञान सम्पादन करते हुए सेवनीय ईश्वर की उत्तम प्रकार से उपासना करते रहे हैं । उसी प्रकार तुम भी एकमत होकर अपना सांसारिक

कार्य करो, अर्थात् संगठित होकर राष्ट्र सेवा करो ।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥१२

—ऋ०१०।१९१।३।

हे मनुष्यो ! तुम सब की प्रार्थना एक समान हो । पांरस्परिक मिलन भी भेद-भाव रहित एक सा हो । विचार आदान-प्रदान का स्थान भी एक ही हो। अपना मन-मनन करने का साधन अन्तःकरण और चित्त-विचार जन्य ज्ञान एक विधि हो । मैं तुम्हें एक ही उत्कृष्ट रहस्य पूर्ण वचन कहता हूँ । और तुम्हें एक समान हवि प्रदान करके सुसंस्कृत करता हूँ । अर्थात् समस्त प्राणी मात्र को एक सा ज्ञान देता हूँ । अर्थात् सभी सामाजिक व राष्ट्रीय समस्याओं पर हितकारी निर्णय से एक मत होकर अपनी व राष्ट्र की उन्नति करो ।

• • •

१०. मंगल कामना

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु ।
स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः ।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ।।१।।
—अथर्व०१।३१।४।

माताओं का मंगल हो, पिताओं का मंगल हो, समस्त गौ आदि पशुओं का मंगल हो संसार के मनुष्यों का मंगल हो । हम सब के लिए सब प्रकार का ऐश्वर्य और उत्तम ज्ञान हो और हम सूर्य को बहुत काल तक देखते रहें, अर्थात् दीर्घायु हों ।

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्त्रः प्रदिशो भवन्तु । शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ।।२।।
—अथर्व०१९।१०।८।

यह विस्तीर्ण प्रकाश का गोला सूर्य हम सब मानवों के लिए शान्ति लाता हुआ उदित हो । चारों दिशाएँ हमारे लिए शान्ति को विकीर्ण करें । ये अचल पर्वत हमें शान्ति का सन्देश सुनाएँ । ये समुद्र और नदियां भी हमें शान्ति का पाठ पढ़ाएँ। अर्थात् हमारी मातृभूमि के नदी, नाले, समुद्र, पर्वत आदि सभी हमें मंगलकारी हों और सुखदायक होवें ।

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम् ।
शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ।।
—अथर्व०१९।९।१।

तेजोमय द्युलोक हमारे लिए शान्ति का सन्देशवाहक हो । यह विस्तृत अन्तरिक्ष हमें शान्ति की प्रेरणा दे । ये समुद्र की लहरें हमें शान्ति का गान सुनायें और ये फूलों और फलों वाली औषधि-वनस्पतियाँ हमारे लिए शान्ति के राग गायें। अर्थात् हम अपने राष्ट्र में सब भांति सुख शान्ति एवं समृद्धि का लगातार प्रयास करें । □ □ □